हानि नहीं हुई जितनी मरहठोंके थोड़े आधिपत्यमें हुई। मरहठोंने राजस्थानको मुसलमानोंकी अपेक्षा दूनी हानि की। बहुत दिनोंतक कष्ट उपद्रव सहनेके बाद यदि भारतवासी मोगल साम्राज्यके अध:पतनके समय शान्ति और सुखसे रहकर धीरे धीरे जातीय बल इकट्ठा कर सकते, तो भारतवर्ष फिर उन्नति कर सकता। पर मुसलमानोंके कठोर अत्याचारोंसे छुटकारा पाते न पाते ही भारत मरहठोंके कठोर उपद्रवोंसे कमजोर हो गया। मरहठोंके कारण जो बचा खुचा सार सूखा तो फिर हरा न हुआ। भीम, भीष्म, कृष्णार्जुन और प्रतापसिंहकी मातृभूमि थोड़स अंगरेजोंके पांवों तले जा पड़ी! हाय! कठोर कालकी महिमा कैसी विचित्र है!

बादशाह फर्रुखशेरका थोड़ासा राजत्व धीरे धीरे समाप्त हो चला। बड़े अशुभ समयमें उसने सैयद भाइयोंका प्रभाव घटाना चाहा था और दुष्ट इनायतुल्लहको अपना मन्त्री बनाया था। इनायतुल्लहने ही उसकी खराबी की। जिस आशासे उसने औरंगजेबके इस वृद्ध मन्त्रीको अपना मन्त्री बनाया वह आशा सफल नहीं हुई। इनायतुल्लह अपने पुराने मालिककी दुर्नीतिके अनुसार हिन्दुओंको दुःख देने लगा। सभी हिन्दू उसे द्वेषकी दृष्टिसे देखने लगे। अन्तमें सैयद भाइयोंने एकदम उसकी समाप्ति ही कर दी।

जिस प्रसिद्ध निजामुलमुल्कने हैदराबाद राज्य बसाया, इस समय बादशाहने दोनों सैयदोंकी जबर्दस्ती रोकनेके लिये उसे बुलाया। वह मुरादाबाद जिलेका शासनकर्त्ता था, पर उसकी बुद्धिमानी और कार्यदक्षताका हाल सुनकर बादशाहने उसे राजधानीमें बुलाया और मालवा राज्य देनेकी प्रतिज्ञा की। जब यह बात दोनों सैयदोंको मालूम हुई तो वे दस हजार मरहठोंको लिये हुए दरबारमें पहुंचे और बड़ा क्रोध दिखाकर उसे शाही तख्तसे उतार दिया। फर्रुखशेरकी सब आशाएँ नष्ट हो गईं। उस सङ्कटके समय अम्बर * और बूंदीके राजाओंके सिवा

* टाड साहबको उदयपुरके दफ़्तरमें अम्बरनरेश महाराज जयसिंहका एक पत्र मिला था। उसे पढ़नेसे फर्रुखशेरकी उस समयकी दुरवस्थाका पता लगता है। यह पत्र जयसिंहने राणाजीके मन्त्री बिहारीदासके नाम लिखा था,—

"अमीरउलउमरा आये हुए हैं और बालाजी पण्डितकी मार्फत बातें ते हुई

उसके पास उसका कोई सहायक नहीं रहा; तौभी यदि वह उनकी सलाह पर चलता तो असमयमें उसके प्राण न जाते। पर अपने दुर्भाग्यसे उसने उनकी सलाह न मानी। उन्होंने उसे सच्चे वीर पुरुषकी तरह खुलेआम लड़ाईके मैदानमें उतरने की सलाह दी; पर उसने यह बात नहीं मानी। आखिर वे उसको छोड़कर चले गये। बादशाह फर्रुखशेर बड़ा डरपोक आदमी था। दोनों राजपूत राजाओंकी सलाह न मानकर वह महलके अन्दर रहने लगा; पर बचावका उपाय न देखकर अन्तमें उसे शत्रुओंकी ही कृपाका भरोसा करना पड़ा। सैयदोंने उसे कहला भेजा कि "आप अपने विश्वासी राजपूतोंको छोड़िये और हमारे एक सेनापतिको किलेमें जाने दीजिये। तब हमलोग आपके साथ कोई कठोरता न करेंगे।"

फर्रुखशेरकी सब आशाएँ मिट गईं। उसने सोचा था कि शत्रु महलके अन्दर उसे दुःख न देंगे। इसी ढाढ़स पर महलमें बेगमोंके साथ वह रहने लगा; पर उसका यह ढाढ़स भी टूटा। "काली रात भायनक रूप बनाकर संसारमें आई

हैं। वे कहते हैं कि मुझे सदा भाईकी तरह समझते हैं; पर मुझसे यात्रा करने का अनुरोध करते हैं। किशनसिंह और जीवालालने भी यही सलाह दी। इस-पर मैंने बादशाहके पास एक अर्जी भेजी। अर्जीमें सलाहोंका हाल लिखा और पूछा कि आपकी क्या राय है। बादशाहने मुझे अवसर दिया। सबकी इच्छासे फाल्गुन महीनेकी नवमी (बृहस्पतिवार) को मैंने कुछ दूर यात्रा की और सर्वल-सराय पहुंचकर खेमे खड़े किये। बूंदीके राव राजाको मैंने अपने साथ चलनेको कहलाया; पर वे नहीं आये। उन्होंने कुतुबुलमुल्कका साथ दिया। कुतुबुलमुल्क ने उनके पास कुछ सवार भेजकर अजितसिंहके साथ ही डेरे डालनेको कहलवाया। उन्होंने ऐसा ही किया। कोटाके भीमसिंहकी सेना आई थी; उससे युद्ध हुआ; हाड़ा जेठसिंह लड़ाईमें मारे गये और राव राजा अलीवर्दीकी सरायको भाग गये। उनकी सहायताके लिये मैंने सेना भेजी थी। बादशाहने हम्माम और तोशा-खाना सैयदोंके हवाले कर दिया है। उनकी (सैयदोंकी) जो इच्छा होती है करते हैं;—आप उनका स्वभाव जानते ही हैं। अब मैं अपने प्रान्तको वापस जाता हूं। हुजूर (राणाजी) से बहुतसी बातें जबानी कहनी हैं। मुझसे आप मिलियेगा।—फाल्गुन, १९, संवत् १७७५ वैक्रमीय।"

और दिन बादशाहके टूटे हुए भाग्य-सितारेकी भांति डूब गया। किलेके फाटक बन्द हो गये; बादशाहका कोई मित्र अन्दर जाने नहीं पाया; केवल वजीर और अजितसिंह वहां रहे। उस रात नगरनिवासियोंको अनेक बातोंका भय होने लगा। सब बड़ी चिन्तामें थे। किसीको मालूम नहीं था कि बादशाही महलके भीतर क्या हो रहा है। उधर अमीरउलउमरा १० हजार मरहठे सैनिकोंके साथ राह देख रहा था। सबेरा हुआ। पूर्व आकाशमें सूर्यकी लाल आभा देख पड़तेही बादशाही महलसे नौबत झड़नेका शब्द सुनाई दिया और फर्रुखशेरकी दुर्दशा का हाल मालूम हुआ। सबकी आशाएं लुप्त हो गईं। फर्रुखशेरके उतारे जानेके बाद रफीउलदिर्जात देहलीके तख्त पर बैठा।" पूर्वदेशके राजाओंके पदच्युत होने और मारे जानेमें बहुत थोड़े समयका अन्तर हुआ करता है; यही दशा फर्रुख-शेरकी हुई। उधर जिस समय ढिंढोरिये "उमर दराज हो" कहकर नये बाद-शाहका आशीर्वाद कर रहे थे, उस समय इधर बेचारे फर्रुखशेरके गलेमें फांसीकी रस्सी लगी हुई थी!

तख्तपर बैठकर नये बादशाहने अजितसिंह तथा दूसरे राजपूत राजाओंको सन्तुष्ट करनेका निश्चय किया। उनको सन्तुष्ट करनेका पहला काम यह किया कि "जिजिया" कर उठा दिया। राजपूतोंको प्रसन्न करनेके लिये दोनों चतुर सैयदोंने वजीर इनायतुल्लहको हटाकर उसकी जगह एक राजपूतको दीवान बनाया। इस नये दीवानका नाम राजा रतनचन्द था। रफीउलदिर्जात तीन महीने तक राज्य करके दमेकी बीमारीसे मर गया। उसकी मृत्युके बाद दो और व्यक्ति थोड़े थोड़े दिन राज्य करके इस संसारसे बिदा हुए। आखिर बहादुरशाहका बड़ा लड़का रोशनअख्तर मोहम्मदशाह नाम रखकर सन् १७२० ई० में देहलीके तख्त पर बैठा। इसने तीस वर्षों तक राज्य किया। इसीके शासनसमयमें मोगल-साम्राज्यका पूरा पूरा अध:पतन हुआ। राज्यमें बड़े झगड़े मचे। उस गड़बड़की अवस्थामें सुयोग देख मरहठों और पहाड़ी अफगानोंने भारतमें आकर लूटपाट मचाना आरम्भ किया।

एक तो पहले हीसे राज्यमें बेतरतीबी थी तिसपर दोनों सैयदोंके कठोर आ-चरणोंके कारण और भी गड़बड़ फैली। जो लोग उन दोनोंसे मिले हुए थे उनमेंसे

अधिकांश—विशेषकर निजाम †—उनसे बड़े नाराज हुए। आगे लिखा जा चुका है कि निजाम एक निपुण सेनापति थे। मालवाका उद्धार करके उसकी उन्नति करनेमें उन्होंने जिस कार्यकुशलताका परिचय दिया था उसे देखकर दोनों सैयदों के मनमें बड़ा डर पैदा हुआ था। इस समय निजामको नाराज पाकर उनका डर और भी पक्का हो गया। उन्होंने अपनी हानि आप की। उन्हींके कठोर आचरणोंके कारण भारतसे "मोगल बादशाह" नाम लुप्त हुआ। तुच्छ अहङ्कारमें पड़कर अपना अधिकार बनाये रखनेके लिये उन्होंने जिन लोगोंको बादशाह बनाया वे बादशाह होनेके बिलकुल अयोग्य थे; उनके द्वारा प्रजाको कोई भलाई नहीं हुई। सच तो यह है कि वे केवल कठपुतलीकी तरह सिंहासन पर अधिकार किये बैठे रहते; कोई उनको बादशाह न मानता; अधिकारी या जो कोई थे दोनों सैयद ही थे। उनके कठोर आचरणोंको देखकर धीरे धीरे प्रजाओंको राजभक्ति भी लुप्त हो गई। सभी लोग स्वाधीनतासे रहने लगे। इस अवसर पर निजामने भी अपनेको स्वाधीन प्रकट किया और असीरगढ़ तथा बुरहानपुरके दुर्गों पर अधिकार करके अपना बल बढ़ाया। सैयदोंको अनेक प्रकारकी आशङ्का होने लगी। आखिर अपना मतलब सिद्ध करनेके लिये उन्होंने राजपूत सामन्तोंसे ‡

† राजा जयसिंहने इस विषयमें राणाजीके मन्त्री बिहारीदासको एक पत्र लिखा था; उसके कुछ अंशका अनुवाद हम नीचे प्रकाशित करते हैं,—

"आपने लिखा है कि आपके मालिक सैनिकोंके लिये रुपये भेज रहे हैं; पर मुझे इसकी खबर नहीं। वे सब रुपये ऊंटों पर लदवाकर बिना विलम्ब भेज दीजिये। नवाब निजामुलमुल्क उज्जैनसे बहुत तेजीके साथ आगे बढ़ रहे हैं और जुबेलाराम यहां आता है। आगरेसे समाचार आया है कि वह काल्पीमें नदी पार कर चुका है। दीवानजीसे कहिये कि सेनाके सहित शीघ्र जा मिलें। देर न हो। रुपयों पर ही सब कामोंका भरोसा है।—भादों, चतुर्थी, सं० १७७६ वि०।"

‡ इस अवसर पर नागोरके राजा बख़्तसिंहने राणाजीके मन्त्री बिहारीदास को एक पत्र लिखा था, उससे इस विषयमें बहुतसी बातें मालूम होती हैं। उस पत्रका आशय यह है,—

"आपका पत्र मिला। पढ़कर प्रसन्नता हुई। दीवानजीका रुक्का यथासमय

सहायता मांगी। कोटा और नरवरके राजकुमार निजामका सैनिक बल दबानेके लिये अपने सरदारों और सामन्तोंके सहित नर्मदाके किनारे गये। पर युद्धदक्ष निजामके मुकाबलेमें वे ठहर नहीं सके। कोटाका हाड़ा राजा लड़ाईमें मारा गया।

मोगल बादशाहके हाथसे हैदराबाद राज्यके निकलते ही अवध प्रान्त भी स्वाधीन हो गया। सआदतखांने * उसे स्वाधीन किया। जिस समय निजामने स्वाधीनताका झगड़ा उठाया उस समय सआदतखां बीना दुर्गका सेनापति था। बादशाह मोहम्मदशाहने उसे अमीरुलउमरा और कुतुबुलमुल्क (सैयद भाइयों) का अहङ्कार तोड़नेके लिये बुलाया। बादशाहकी आज्ञा पाकर वह अमीरुलउमारका प्राण लनेका यत्न करने लगा। हैदरखां § नामक एक साहसी व्यक्तिने चुपकेसे छुरी मार-

मुझे मिल गया था। मैं उनका अभिप्राय समझ गया। आप लिखते हैं कि दोनों नवाब (सैयद) लड़ाईके मैदानमें उतरे हैं, दोनों महाराजोंने उनका साथ दिया है और आपकी सेना चल चुकी है, क्योंकि पुरानी मित्रता क्या कभी टूट सकती है? मैं यह सब समझ गया। पर नवाबोंमेंसे कोई लड़ाईके मैदानमें नहीं जायगा; वे निश्चिन्त होकर घरमें बैठे आनन्द करेंगे। पर यदि उनको किसी कारणसे समरक्षेत्रमें उतरना ही पड़े तो उन्हींका साथ दीजियेगा। यदि दूसरे दलका साथ देंगे तो आपकी हानि होगी। अच्छा, मैं आपको पहलेही खबर दूंगा। इस समय सावधानीसे रहिये। यदि आप अपना धागा स्वयं लपेट सकते हैं तो उसे दूसरेको तोड़ डालनेके लिये न दीजिये। आप बुद्धिमान् हैं, इतने ही इशारेसे समझ सकते हैं। जहां आप जैसे कर्म्मचारी हैं उस घरपर किसी तरहकी विपद् नहीं पड़ सकती।"

* सआदतखां पहले एक खुरासानी सौदागर था। अपनी वीरतासे वह सेनापति और फिर अवधका अधिकारी हो गया था।

§ हुसैनअली (अमीरुलउमरा) की हत्या करनेके अभिप्रायसे हैदरखां रास्तेके एक किनारे एक अर्जी लेकर खड़ा हुआ। जिस समय हुसैनअली दलबलके सहित उस रास्तेसे जा रहा था उस समय उसने दूरसे वह अर्जी उसे दिखलाई। हुसैनअलीने उसे निकट आनेको कहा। अनुमति पाकर उसने पास जाकर अर्जी दी। अमीर (हुसैनअली) बड़े ध्यानसे उस अर्जीको पढ़ने लगा। अवसर पाकर

कर अमीरका अन्त कर दिया । बादशाह उस समय तम्बूमें था। अमीरके मारे जानेका समाचार पाकर उसके भाई अब्दुल्लह (कुतुबुलमुल्क) को कैद करनेके विचारसे वह चला। क्रूर वजीर अब्दुल्लहने बादशाहका मतलब समझ कर दहली के तख्तपर इब्राहीम नामक एक दूसरे मोगलको बिठा दिया और मोहम्मदशाह के विरुद्ध लड़ने चला। इस समय राजपूत लोग बिलकुल अलग थे; उन्होंने किसी पक्षका साथ नहीं दिया। इसके बाद दोनों दल युद्धके लिये तैयार हुए; पर शीघ्र लड़ाई नहीं हुई; कुछ समय तक रुकी रही; दोनों ओरके सैनिक लड़नेके लिये बहुत व्यग्र हो उठे। बाद दीवान राजा रतनचन्दके मारे जाते ही घोर लड़ाई आरम्भ हो गई। बहुत देरके बाद वजीर (अब्दुल्लह) मोहम्मदशाहके हाथों कैद हुआ और दण्ड पाकर थोड़े दिनोंमें इस संसारसे उसने मुँह मोड़ा *। बादशाह सआदतखांसे बहुत प्रसन्न हुआ और 'बहादुरजङ्ग' का खिताब देकर उसे अवध-राज्य का अधिकारी बना दिया। राजपूत राजे विजयी बादशाहको अभिनन्दन करने गये। वे इस लड़ाई झगड़ेसे बिलकुल अलग थे, अतएव बादशाहने उनके प्रति सन्तोष प्रकाश किया और अम्बर तथा जोधपुरके राजाओंको कुछ जिले दिये †। मरहठोंका मुकाबला करनेके कारण गिरिधरदासने ‡ मालवा राज्य पाया और वजीर पद ग्रहण करनेके लिये हैदराबादसे निजाम बुलाये गये।

भारतकी उस राजनीतिक गड़बड़के समय मेवाड़ सबसे अलग नीति पर चला। जिस समय दूसरे राजे मोगलसाम्राज्यके विप्लवकी अवस्थामें सुयोग देखकर अपने अपने राज्यको बड़ी मुस्तैदीसे बढ़ा रहे थे, उस समय मेवाड़के नरेश अपनी पुरानी

हैदरखांने उसकी छातीमें छुरी घुसेड़ दी। अमीर तो छुरी लगते ही पाल्कीहीमें मर गया और उसके नौकरोंने हैदरको भी टुकड़े टुकड़े कर डाला।

Elphinstone's History of India,. page 694.

* इतिहासवेत्ता एलफिन्स्टन साहब लिखते हैं कि अब्दुल्लह पवित्र वंशका था इस कारण बादशाहने उसकी जान नहीं मरवाई।

† जयसिंहने आगरा तथा अजितसिंहने गुजरात और अजमेरके जिले पाये।

‡ गिरिधरदास नागर ब्राह्मण था। वह रतनचन्दके एक प्रधान कर्मचारी जुबेलारामका पुत्र था।

प्रथाके अनुसार बिलकुल चुपचाप बैठे थे। दूसरोंका उद्योग देखकर भी उनके मन में लालसा नहीं पैदा हुई। अम्बरराजका अधिकार दूर यमुनाके किनारे तक फैला था। इधर मारवाड़के राजा अजितसिंहने अजमेरके किलेके ऊपर अपनी विजयपताका उड़ाई, गुजरातको छिन्नभिन्न कर दिया और अपनी विजयी सेनादलको मरुभूमिमें बल्कि द्वारका तक वे ले गये। पर मेवाड़ने उस समय कुछ उत्सुकता नहीं दिखाई। मेवाड़के राणाजी अपने § प्राचीन सामन्त राजाओंके साथ चुपचाप बैठे थे। ऐसी नीति पर उनके चलनेका कारण ढूंढ़ना कठिन नहीं है; एकबार मेवाड़की सदाकी नीति पर विचार कीजिये। जिस नीतिकी रक्षाके लिये गिह्लोट वीर लोग बिना किसी पशोपेशके—बड़े उत्साहके साथ—अपने हृदयका खून बहा गये थे, उस नीतिमें पीछे कदाचित् गड़बड़ पड़े, कदाचित् फिर मुसलमानोंसे मिलना पड़े, इसी भयसे वे राज्यका विस्तार बढ़ानेका उद्योग नहीं करते थे और राजनीतिक विषयमें नुकसान होनेपर भी अपनी नीति नहीं छोड़ते थे; अतएव उनके राज्यका फैलाव भी बढ़ता नहीं था। राज्यकी उन्नतिमें दो सामन्त-सम्प्रदाय भी बाधा डालते थे। यहांतक कि एक दलके राज्य जीतनेके लिये उद्योग करने पर भी दूसरा दल द्वेषके कारण मैदान छोड़कर चला आता था। उदाहरणमें केवल एक व्यक्तिके विषयमें हम यहां लिखते हैं। शक्तावतसरदार साहसी जेठसिंहने राठौड़ोंसे ईडर राज्य छीनकर केलवाड़ा तक सब भूमि अपने अधिकार में कर ली। धीरे धीरे यह साहसी सरदार दूसरे प्रदेशों पर अधिकार करनेके लिये जा रहा था इतनेमें राणाजीने उसके पास उदयपुर लौट आनेकी आज्ञा भेजी; अतएव उसका उद्योग अधूरा रह गया। राणाजीके जेठसिंहको बुला लेनेका कारण इसके सिवा और कुछ नहीं था कि उसके प्रतिद्वन्द्वी चूंडावत सरदारने उसके विरुद्ध राणाजीके यहां मुकद्दमा दायर किया था। ऐसे ही द्वेषोंके कारण मेवाड़का भीतरी बल बहुत घट गया था। उस समय वहांका कोई सामन्त अपने अधिकारकी भूमिमें दुर्ग बनवा नहीं सकता था; क्योंकि उस समय किसी सामन्तके नाम तीन वर्षसे अधिकके लिये पट्टा नहीं होता था। भोजनादिसे अपना निर्वाह करनेके लिये वे जमीन पाते थे, और पर्वत ही दुर्गके समान थे। मोगल

§ डूंगरपुर और बांसवाड़ा भी।

बादशाहका जोर कम होनेके साथ साथ उनकी आत्मरक्षिणी प्रथा एक प्रकार छूट गई; परन्तु इसके थोड़े ही दिन बाद जब मरहठे और पठान बड़े जोरशोरके साथ मेवाड़में घुसने लगे तब वहांके सरदारोंको दुर्ग बनवाने ही पड़े।

राणा द्वितीय संग्रामसिंह ने १८ वर्षों तक राज्य किया । उनके समयमें मेवाड़का सम्मान बना रहा और शत्रुओंके अधिकारमें चले गये हुए कई राज्य पुनः प्राप्त हुए। राणाजीने विहारीदासको अपना मन्त्री बनाया था इससे उनकी सावधानी और बुद्धिमानीका विशेष परिचय मिलता है । विहारीदासके समान सुदृढ़ और विश्वस्त कोई दूसरा व्यक्ति कभी मेवाड़का मन्त्री नहीं हुआ । इस बातकी सचाई उन पत्रोंके पढ़नेसे जो कई राजाओंने उसके नाम लिखे थे मालूम हो सकती है । जबतक मेवाड़की गद्दी पर तीन राणा बैठे तबतक अकेले उसने मन्त्रित्व किया; परन्तु राणा संग्रामसिंहकी मृत्युके बाद मेवाड़में मरहठोंने जो उपद्रव मचाया उसे यह बहुत उद्योग करने पर भी शान्त न कर सका।

राणा संग्रामसिंहके चरित्रके सम्बन्धमें अनेक कहानियां प्रसिद्ध हैं। उन कहानियोंसे मालूम होता है कि क्या राज्यशासन क्या गृहपालन सभी कामोंमें वे बड़े निपुण थे। वे समझदार, न्यायी और दृढ़प्रतिज्ञ राजा थे । जिस कामको उठाते उसे बिना समाप्त किये न छोड़ते । क्या राज्यसम्बन्धी क्या घराऊ सब प्रकारके खर्च चलाते और जिन कामोंमें बेमतलब बहुत द्रव्य खर्च करना पड़ता उनको जांच करके व्यर्थ खर्चको घटा देते । उनके सम्बन्धकी कहानियोंमें जो अधिक मनोरञ्जक हैं उनको हम यहां लिखते हैं।—कोटारियोका चौहान सामन्त प्रथम श्रेणीके सामन्तोंमें था। मेवाड़ राज-दरबारमें उसका अधिक मान था। एक दिन उसने राणाजीसे जो वस्त्रालङ्कार वे व्यवहारमें लाते थे उनसे कुछ अधिक लानेकी प्रार्थना की। शिष्टाचारके लिये राणाजीने उसकी प्रार्थना स्वीकार की। इसपर मनमें यह सोचता हुआ कि राणाजीने उसकी प्रार्थना और सलाह मान ली, वह बड़े आनन्दके साथ अपनेको सराहता हुआ अपने घर गया। परन्तु इधर राणाजीने अपने मन्त्रीको आज्ञा दी कि—"कोटारियोके सामन्तको जो भूमि वृत्तिकी रीति पर दी गई है उसमेंसे दो गांव स्वतन्त्र कर लो ।" थोड़ी देरमें यह खबर उस सामन्त तक पहुंची। वह घबराया हुआ राजमहलमें पहुंचा और

डरता डरता बोला —"महाराज! मुझसे क्या अपराध हुआ कि आपने मुझे यह दण्ड दिया (अर्थात् दो गांव ले लिये)?" राणाजीने जरा मुस्कुराकर बहुत धीर भावसे उत्तर दिया—"कुछ नहीं, रावजी! आपने मेरी पोशाक बढ़ानेका अनुरोध किया था; मैंने हिसाब लगाया तो मालूम हुआ कि दो गांवोंकी आमदनीसे इस पोशाकका खर्च चल जायगा। जब कि मेरी आमदनीका सब द्रव्य भिन्न भिन्न कामोंमें खर्च होता है, तब पूर्वजोंकी नियत की हुई पोशाक बढ़ाकर आपकी इच्छा पूरी करनेके लिये मुझे आपके उन दो गांवोंकी आमदनी लेनेके सिवा कोई दूसरा उपाय दिखाई नहीं दिया।" जवाब सुनकर चौहान सरदारके ज्ञाननेत्र खुल गये। उसने अपनी प्रार्थना लौटा ली।

दूसरी।—यातो भूलसे या याद न रहनेके कारण एक दिन राणाजीने अपने बनाये हुए कानूनके विरुद्ध एक काम किया। भोजनगृह, वस्त्रालय, खास खर्च, जनानखाना इत्यादि सब प्रकारके खर्चके लिये अलग अलग भूमि नियत थी और ऐसी समस्त भूमिको "थूआ" कहते थे। हरएक "थूआ"का प्रबन्ध एक एक कर्मचारीके सुपुर्द था। वे सब कर्मचारी "थूआदार" कहे जाते थे। उनमेंसे एक "थूआदार" का एक "थूआ" राणाजीने स्वतन्त्र कर लिया था। एक दिन राणाजी अपने सरदारोंके सहित "रसोड़े" में * बैठे भोजन कर रहे थे। नियमानुसार परोसनेवाला सब चीजें ला लाकर परोसने लगा। दही परोसा गया †; पर उसमें चीनी नहीं थी। राणाजी इसके लिये प्रबन्धकर्त्ता पर नाराज होने लगे। वह हाथ जोड़कर विनीतभावसे बोला—"अन्नदाताजी! मन्त्री महाशय कहते हैं कि चीनीके लिये जो गांव नियत था उसे महाराजने स्वतन्त्र कर लिया है।" "ठीक है" राणाजीने उत्तर दिया और बिना चीनी ही दही खा लिया।

तीसरी।—बालिग होनेपर राणा संग्रामसिंहने राज्यकार्यका भार अपने ऊपर लिया था। उनके पिताकी मृत्युसे लेकर उस समय (अर्थात् उनके बालिग होनेके समय) तक उनकी माता राज्यके कामकाज देखती थीं। राजगद्दी पर बैठनेके बाद संग्रामसिंहने किसी कारणसे दरियावदके सरदारकी जमींदारी कुर्क करा

* रसोड़ा = भोजनागार = रसोई-घर।

† 'दही' शब्द सर्वथा पुंलिङ्ग है।

की। यह बात सभी लोग जानते थे कि राणाजी दोषीके सिवा कभी किसीको दण्ड नहीं देते थे और एकबार दण्ड देकर शीघ्र क्षमा नहीं करते थे; अतएव किसीने रणोत दरियावद सरदारकी ओरसे क्षमा मांगनेका साहस नहीं किया। किसी किसी प्रकार बड़े कष्टके साथ सरदारने दो वर्ष बिताये;—तीसरे वर्षके प्रारम्भमें बड़ी प्रार्थना और विनयके सहित बांदियोंके द्वारा उसने राणाजीकी माताके पास एक अर्जी भेजी । अर्जीके साथ उसने दो लाख रुपयोंका तमस्सुक भी भेजा और बांदियोंको बहुत रुपये इनाममें दिये। राणा संग्रामसिंहका यह नियम था कि मध्याह्न समयके भोजनसे पहले प्रति दिन वे माताजीके दर्शनोंको जाया करते थे। एक दिन जब वे माताजीके भवनमें मामूली समय पर पहुंचे तो उन्होंने वृत्तिच्युत रणोत सरदारकी अर्जी इनके हाथ पर रख दी और बहुत अनुरोध किया कि उसकी जमींदारी उसको लौटा दो । यदि किसीको जमीन देनी होती थी तो राणाजी सबसे पहले प्रधान मन्त्रीको आज्ञा करते थे; फिर नियमानुसार दानपत्र देनेमें आठ दिन लग जाते थे; क्योंकि इन आठ दिनोंमें दानपत्र पर आठ मुहरें * होती थीं । यह मेवाड़राजकुलका सदाका नियम था। पर उस दिन राणा संग्रामसिंहने इस नियमका विचार न करके मन्त्रीको आज्ञा की कि इसी समय दानपत्र दे दो। आज्ञानुसार दानपत्र राणाजीके सामने लाया गया। तब माताजीके हाथमें उसे देकर नम्रतापूर्वक उन्होंने कहा—"यह दानपत्र उसको देकर तमस्सुक लौटा दीजियेगा ।" इसके बाद सदाकी भांति उनको प्रणाम कर और आशीर्वाद ले वे भोजन करने गये । दूसरे दिन उन्होंने और दिनोंसे एक घण्टा पहले भोजन तैयार किये जानेकी आज्ञा की । सबको और विशेषकर माताजीको बड़ा आश्चर्य हुआ। वह दिन तो बीत गया, पर जब दूसरे दिन भी राणाजी उनसे मिलने नहीं गये तब उनका आश्चर्य और भी बढ़ गया । उन्होंने इनके पास आदमी भेजा । उत्तरमें राणाजीने नम्रताके साथ कहला भेजा कि "अवकाश न होनेके कारण मैं आ नहीं सकता ।" पुत्रका असन्तोष देखकर माताजी बहुत डरीं । जब वे राणाजीके इस चित्तविकारके कारण पर विचार

* मेवाड़के ८ मन्त्री थे; वे सब यथानियम दानपत्रों पर स्वहस्ताक्षर करते थे। इसी प्रकार मरहठोंके "आठ प्रधान" थे।

करने लगीं तब उनको उस दानपत्रके सिवा कोई दूसरा कारण समझमें नहीं आया। तब उन्होंने मन्त्रीसे अनुरोध करनेको कहा; पर मन्त्रीको साहस नहीं हुआ; अतएव उनको दूसरा उपाय करना पड़ा; तथापि कोई उद्योग सफल नहीं हुआ। माताजी बहुत दुःखित हुईं; उनको क्रोध आ गया; अकारण वे राजभवन की स्त्रियों पर कोप प्रकट करने लगीं और अन्तमें उन्होंने आहार त्याग दिया; तौभी संग्रामसिंहकी दृढ़ प्रतिज्ञा पहलेहीकी तरह अचल और अटल रही। आखिर दुःखिता माताजीने गंगास्नान करनेको जाना चाहा। तीर्थयात्राकी सब तैयारियां हो गईं और शरीररक्षक भी तैयार हो गये। जानेके समय वे पुत्रका मुख देखनेकी बाट जोहने लगीं; परन्तु संग्रामसिंह नहीं गये। लाचार होकर दुःखार्त्ता माताजी यात्राको चली गईं। प्रथम ब्रजकिशोर श्रीकृष्णजीकी पूजा करनेके अभिप्रायसे वे मथुराकी ओर चलीं। जयपुरके मार्गसे उनकी सवारी जा रही थी। जयपुरनरेशसे उनकी कन्या ब्याही थी; अतएव जाते समय कन्या और दामादको देखनेके निमित्त उन्होंने उस नगरमें प्रवेश करनेकी इच्छा प्रकट की। महाराज जयसिंह आगे बढ़कर बड़े सम्मानसे सासको नगरमें ले गये और अधिक सम्मान दिखानेके लिये उन्होंने कुछ समयके लिये उनकी पालकी भी अपने कन्धे पर रख ली थी *। सासके मुखसे सालेके चित्तविकारका वृत्तान्त जानकर जयसिंह ने उनको बहुत धीरज धराया और कहा कि "मैं आपसे प्रतिज्ञा करता हूं कि आपके तीर्थयात्रासे लौटने पर आपके साथ उदयपुर चलकर राणाजीको समझाकर मना लूंगा।" इच्छानुसार तीर्थभ्रमण करके माताजी जयपुरको लौटीं और दामादको साथ लेकर उदयपुर गईं। राजपूतोंमें मेहमानदारीका नियम बड़ा कठोर है। अम्बरनरेश जयसिंह किस मतलबसे उदयपुरमें आये, यह राणाजी समझ गये। वे खूब समझते थे कि बहनोईका अनुरोध न टाल सकेंगे; अतएव पहलेहीसे वे इसके लिये तैयार हो रहे;—जयसिंहको अनुरोध करनेका अवसर न देकर पहले ही उन्होंने माताजीका दर्शन किया। माताके आचरणसे उनको जो थोड़ासा दुःख हुआ था उसका हाल उन्होंने किसीको जानने नहीं दिया। पहले तो वे जयसिंहका स्वागत करनेके लिये कुछ आदमियोंके साथ जानेको

* यह राजपूतोंमें एक पुरानी प्रथा थी।

तैयार हुए थे; परन्तु फिर वहां न जाकर सबसे पहले माताजीके खेमेको गये। उनके चरणोंमें प्रणाम करने, उनका आशीर्वाद लेने और उनको राजभवनतक पहुंचा देनेके बाद वे बहनोईके सादर स्वागतको गये। इस विषयमें उन्होंने केवल इतना ही लिखा है कि—"घरके झगड़ोंको घरके अन्दर ही तक रहने देना चाहिये।"

चौथी।—एक दिन दोपहरके समय राणा संग्रामसिंह भोजन करने बैठे थे, इतनेमें समाचार आया कि मालवेके पठानोंने मुन्दोसर जिलेके कई गांव लूटे हैं और वहांके निवासियोंको कैद करके मेवाड़ पर आक्रमण किया है। यह समाचार पाते ही वे भोजन छोड़ उठ खड़े हुए और हाथ मुंह धो, वर्म पहन तथा अस्त्रशस्त्रादि लेकर डङ्का और नक्कारा बजानेकी आज्ञा दी। नक्कारोंके बजते ही सब सरदार चैतन्य हुए, पर कोई इस प्रकार यकायक युद्धकी सूचना होनेका कारण न समझ सका। अस्तु, सेना तैयार होकर खड़ी हुई। राणाजीने आप भी लड़ाईमें जानेकी इच्छा प्रकाश की, परन्तु सब सरदारोंने यह कहकर रोका कि "महाराज! हमलोगोंके रहते एक साधारण शत्रुके मुकाबलेमें आपका जाना कभी उचित नहीं; इससे गौरव घटेगा।" राणाजीको सरदारोंका कहना मानना ही पड़ा। सब लड़ाईमें गये। कुछ देरके बाद कानोड़का सरदार युद्धकी तैयारी करके आया। वह बहुत बीमार था; मुख उसका पीला पड़ गया था और आंखें घुस गई थीं। ऐसी दशा देखकर राणाजीने लड़ाईमें जानेसे उसे बारंबार मना किया; पर उसने गम्भीरताके साथ कहा—"महाराज! मुझे न रोकिये। जबतक हाथमें तलवार पकड़नेकी शक्ति है तबतक मैं कदापि रुक नहीं सकता।" आखिर राणाजीने जानेकी अनुमति दी। राजपूतों और पठानोंकी लड़ाई आरम्भ हो चुकी थी ऐसे समयमें कानोड़सरदार वहां पहुंचा। लड़ाईमें राजपूतोंकी जीत हुई; पठान भागे; परन्तु कानोड़सरदार मारा गया और उसका पुत्र बहुत घायल हुआ। जीतकी प्रसन्नताके साथ नगरमें विजयी राजपूतोंके लौटनेपर राणाजीने हत कानोड़वीरके वीर पुत्रको अपने हाथोंसे बीड़ा * दिया। यह उच्च सम्मान पाकर उसने

* मेवाड़के दूसरी श्रेणीके सरदारोंको राणाजी अपने हाथसे बीड़ा नहीं देते थे। कानोड़सरदार भी दूसरी श्रेणीके सरदारोंमें था, अतएव उसके पुत्रको राणाजीके हाथसे बीड़ा मिलना उसके लिये बड़े सम्मानकी बात थी।

अपनेको कृतार्थ माना और कृतज्ञताके साथ कहा—"कृपानाथ! आज मैंने पिता की जीवनके बदलेमें यह अमूल्य धन पाया।"

पांचवीं।—एक दिन एक चापलूस राणाजीके पास बैठा बैठा उनके मनमें सालुम्ब्रा-सरदारके विरुद्ध कुछ सन्देह पैदा करनेका उद्योग करने लगा; परन्तु बुद्धिमान् राणाजीने उसकी बातका बिलकुल विश्वास न करके उत्तर दिया—"यह सन्देह झूठा है। इससे रावतजी दुःखित होंगे।" इसके बाद उस दुष्ट चापलूसको यह दिखानेके लिये कि रावतजी पर उनका कितना विश्वास है राणाजीने उनको (अर्थात् सालुम्ब्रा-सरदार रावतजीको) बुलानेके लिये आदमी भेजा। उस समय रावतजी मालवेके पठानों पर विजय प्राप्त करके लौटे थे और राणाजीसे बिदा होकर दलके सहित अपने स्थानको जा रहे थे। अपने दुर्गके द्वार पर पहुंचकर उन्होंने सैनिकोंको अपनी अपनी जगहोंको जानेकी आज्ञा दी और आप घोड़ेसे उतरकर पैदल जनाने महलकी ओर बढ़े। महलके फाटक पर पहुंचते ही पहरुए ने एक पत्र देकर कहा कि "रावतजी! यह पत्र राणाजीने आपको दिया है।" दीपककी उजियालेमें पत्र पढ़कर सालुम्ब्रा-सरदारने खास साईसको तुरन्त घोड़ेपर चारजामा कसनेको आज्ञा दी। द्वार पर उनकी पत्नी और बच्चे अभिनन्दन करने को खड़े थे। रावतजीने सोचा था कि सुकुमार बच्चोंको गोदमें लेकर वे शान्तिके साथ लड़ाईकी थकावट मिटावेंगे; परन्तु ऐसा अवसर आने नहीं पाया। केवल एकबार प्रेममयी पत्नी और बच्चोंको देखकर राजभक्त रावतजी घोड़े पर सवार होकर साथियोंके सहित नगरको ओर चले गये। दोपहर रात हो गई थी; सारा संसार निद्रादेवीको गोदमें सोया हुआ था; प्रकृति स्थिर गम्भीर और शान्त थी; केवल बीच बीचमें झिल्लियोंके बोलने और हवाके सन सन चलनेका शब्द सुन पड़ता था;—यदि और कोई वस्तु उस रातका सन्नाटा तोड़नेवाली वहां थी तो उन्हीं घोड़ोंके टापोंकी ध्वनि थी। रावतजीके स्थानमें कोई नहीं था; नौकर चाकर खानेकी चीजें आदि किसीका भी प्रबन्ध नहीं था; परन्तु राणाजीने पहले हीसे सब सामान एकत्रित करा दिया था। क्योंकि रातके समय उनके आनेका वृत्तान्त मालूम होते ही उन्होंने उनके तथा उनके साथियों और उनके सात घोड़ों के खानेका सामान उनके टिकनेके स्थानमें रखवा दिया था। दूसरे दिन सालुम्ब्रा-

सरदार रावतजी उचित समय पर राज-दरबारमें उपस्थित हुए। राणाजीने उनपर बहुत प्रसन्नता प्रकट की और उसी दिन उनको एक जमींदारी दी। राणा संग्रामसिंहका यह असीम कृपाप्रसाद पाकर सालुम्ब्रासरदार बड़े आश्चर्यमें आये और इसका असली कारण जाननेके लिये गम्भीर भावसे पूछा "महाराज! मैंने कौनसा ऐसा असाध्य काम किया है कि आपने मुझको आज इतना बड़ा पुरस्कार दिया? और यदि मैंने कुछ किया भी तो यह तो मेरा कर्त्तव्य ही था। कर्त्तव्यपालनके बदलेमें आपका पुरस्कार कैसे ले सकता हूं? वीरवर चण्डके वंशधरोंका यह कर्त्तव्य ही है कि वे मेवाड़की भलाईके लिये यत्न करें। इस कर्त्तव्यका पालन करनेमें यदि हमलोगोंको प्राण भी दे देने पड़ें तौभी पुरस्कार लेना अनुचित है। अतएव महाराज, मुझे पुरस्कार लौटा देनेकी अनुमति दीजिये। वीर चण्डका वंशधर कर्त्तव्यका पालन करके अपने राजासे किसी प्रकारका पुरस्कार नहीं चाहता।" तेजस्वी रावतजी किसी प्रकार पुरस्कार लेनेपर राजी नहीं हुए; परन्तु जब उन्होंने देखा कि राणाजी बड़ा जोर और दबाव डाल रहे हैं तब कहा— "श्रीमन्! यदि राजा कोई चीज दे तो उसके लेनेमें बेपरवाई करना मानों राजाका अपमान करना है; परन्तु इसके बदलेमें यदि आप मेरी एक बात मानें तो मैं समझूंगा कि मुझे बड़ा भारी पुरस्कार मिला। यह कृपा मुझे सदा याद रहेगी। मेरा निवेदन केवल इतना ही है कि आज मैंने राजमहलसे जो कई पात्र खानेकी वस्तुएँ उपहारमें पाईं भविष्यमें भी जब कभी आप या आपके कोई वंशधर मुझे या मेरे किसी वंशधरको राजधानीमें बुलावें तो इसी प्रकार राजरन्धनशालासे भोजनका प्रबन्ध किया जावे।" राणा संग्रामसिंहने प्रसन्नताके साथ उनकी प्रार्थना स्वीकार की। उस समयसे वीरवर चण्डके वंशधर बराबर इस सम्मानसे सम्मानित होते आते हैं।

ऊपर जो कई कहानियां लिखी गईं उनसे राणा संग्रामसिंहके महत् चरित्रका स्पष्ट परिचय मिलता है; अतएव इस विषयमें अधिक लिखना व्यर्थ है। १८ वर्षों तक उन्होंने राज्य किया;—इस बीचमें अपने ऊँचे पदके गौरवकी रक्षा करके वे अपने राज्यकी बहुत भलाई कर सके। शत्रुके आक्रमणसे मेवाड़की रक्षा करनेके हेतु उन्होंने १८ बार युद्ध किये थे। यद्यपि संग्रामसिंहकी शासननीति बँधी

हुई हदके अन्दर तक ही थी; यद्यपि अपने पूर्वजोंकी सदाकी प्रथा थोड़े अंशमें भी छोड़नेसे वे मेवाड़को अधिकतर लाभ पहुंचा सकते; तौभी उनके द्वारा मेवाड़का जो उपकार हुआ उतने हीसे उनकी प्रजाएँ उनपर बड़ी भक्ति और अनुराग रखती थीं। प्रजाकी भलाई करने तथा उसके अभावोंको पूर्ण और दुःखोंको दूर करनेका यत्न वे सदा किया करते। इसके कारण क्या स्वदेश क्या विदेश सब जगह उनका नाम फैला। वीरवर बप्पारावलके पवित्र वंशका उच्च सम्मान जो गिह्लोट राजे स्थिर रख सके थे उनमें राणा संग्रामसिंह ही अन्तिम थे। इनकी मृत्युके साथ साथ मेवाड़में महाराष्ट्रीय प्रभुताकी जड़ जमी। महाराष्ट्रीय अधिकारसे मेवाड़का राजनैतिक झुकाव किस ओरको हुआ अब हम इसी विषयका वर्णन करते हैं।

राणा संग्रामसिंहके कुल चार पुत्र थे; उनमेंसे सबसे बड़े दूसरे जगत्सिंह सं० १७९० वै० (सन् १७३४ ई०) में पिताकी गद्दीपर बैठे। इनके समयका सबसे पहला काम राजपूतोंकी तीनों शक्तियोंका पुनः एक होना है। पहले ही कहा जा चुका है कि राणा अमरसिंह द्वितीयने इन शक्तियोंको संयुक्त किया था; बाद अजितसिंहकी असावधानीसे तीनोंकी एकताकी जड़ कटी; परन्तु आज राणा जगत्सिंहने सन्धि करके फिर तीनों शक्तियोंको एक कर दिया *। तीनों स्थानोंके तत्कालीन राजाओंने अपने अपने उपास्य देवताके नाम पर कसमें खाईं कि कोई

* सन्धिपत्र।

राणाजीकी मुहर।

श्री एकलिङ्ग। (क)

स्वीकृत। स्वीकृत।

सीतारामो जयति। (ग)	व्रजाधीश। (ख)	अभयसिंह। (घ)

स्वस्ति श्री। एकताबद्ध अधिपतियोंके द्वारा निम्नलिखित संन्धिपत्र स्वीकृत हुआ। इसका कोई नियम भंग नहीं किया जावेगा। संवत् १७९१ वै० (सन् १७३५ ई०) श्रावण त्रयोदशी। स्थान हुरलाका पड़ाव।

मुसलमानोंके साथ वैवाहिक सम्बन्ध न करेगा और कभी यह एकता कोई न तोड़ेगा। मेवाड़के अन्तर्गत हुरला नामक स्थानमें अपने अपने सामन्तों और सरदारोंके सहित एकत्रित होकर उन्होंने सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर किये। एकता और एकचित्तता दृढ़ रखनेके लिये एक योग्य अगुआकी आवश्यकता थी; अतएव सबने एक राय होकर राणा जगत्‌सिंहको ही सबसे ऊँचा दर्जा सौंपा और उन्हींको सब राजपूतसेनाका नायक बनाया। सैनिक बल धीरे धीरे इकट्ठा होता गया। बरसातके दिन निकट होनेके कारण सबने निश्चय किया कि यह ऋतु बीत जाने पर राणा जगत्‌सिंह यह विशाल सेना लेकर मुगलोंसे लड़नेको चलें। लड़ाईकी सब तैयारियां हो गईं; परन्तु लड़ाई हुई नहीं। प्रबन्ध समाप्त होते न होते ही सन्धि फिर टूट गई। फिर तीनों संयुक्त शक्तियां अलग अलग हो गईं।

निस्सन्देह राजपूतोंका यह गुण बड़ा सुन्दर है कि वे अपनी क्षमता बढ़ाना चाहते हैं; परन्तु कभी कभी उनके इस उत्साहका बहुत बुरा फल हो जाया करता

पहला नियम।—सुख दुःख सब समयके लिये एकता हुई। इस विषयमें सबने शपथ करके एक दूसरेके ऊपर विश्वास जमाया। भविष्यमें कोई यह नियम न तोड़ेगा। जो इसके विरुद्ध काम करेगा सबका विश्वास उसपरसे उठ जायगा। एकके सम्मान या अपमानसे सबका सम्मान या अपमान होगा। इसमें सब बातें समझनी चाहियें।

दूसरा।—जिसका एकके साथ विश्वासघात प्रकट होगा, उसका कोई विश्वास न करेगा। वह किसीके यहांसे सहायता न पावेगा।

तीसरा।—बरसात बीतने पर कार्यारम्भ होगा और प्रत्येक सम्प्रदायके अधिकारी रामपुरमें अपने अपने दलके साथ इकट्ठे होंगे। यदि किसी कारणसे अधिपति स्वयं न आ सकें तो वे अपने कुमार या किसी उच्चपदस्थ कर्मचारीको भेजें।

चौथा।—यदि वह कुमार अनुभव न होने या अदूरदर्शितासे किसी बातमें भूल करे, तो केवल राणाजी उसका फैसला करें।

पांचवां।—कोई कठिन काम हो सब मिलकर उसके लिये यत्न करेंगे।

(क) (ख) (ग)—मेवाड़ मारवाड़ और अम्बरके राजाओंकी मुहरें तथा उनके उपास्य देवताओंके नाम। (घ) मेवाड़के राजा।

है। राणा जगत्‌सिंहके समयमें भी राजस्थानकी यह अवस्था हुई;—राजपूतोंकी एकता फिर टूट गई। मोगल बादशाहतके अधःपतनके समय अम्बर और मारवाड़के राजे बड़े बलवान् और क्षमताशाली होकर मेवाड़के समान हो गये थे। सूर्यवंशीय महाराज कनकसेनके वंशधर राजस्थानके दूसरे राजपूतोंके ऊपर बराबर अपनी प्रधानता बनाये हुए थे; पर कभी सबकी सहानुभूति उनके साथ नहीं हुई। एकता टूटनेका प्रधान कारण यही कमी थी; इसी कमीके सबबसे उन्होंने स्वाधीनता खोई;—यही कमी उनकी क्षमताप्रियताका कड़वा फल थी। पहले ही लिखा जा चुका है कि उक्त लालचके उत्साहमें अनेक बार उन्होंने एक दूसरेके विरुद्ध कार्य किये। मेवाड़के नरेश जिस प्रकार सब बातोंमें बढ़कर थे उसी प्रकार यदि उनको अपना अगुआ मानकर सब एकतासे रहते—अभिन्न रहते—तो भारतकी यह दुर्दशा क्यों होती? क्यों विदेशी लोग कभी इस देशकी स्वाधीनता छीन सकते? राजाओंका पारस्परिक झगड़ा ही भारतवर्षकी दुर्दशाका कारण हुआ। अवश्य ही राजपूत स्वाधीनताप्रिय होते हैं; परन्तु जिस उपायसे जातीय स्वाधीनता मिलती है उसे काममें लाना वे नहीं जानते। इसीसे उनकी स्वाधीनता पानेकी प्यास कभी न बुझी और इसी अभावसे आज राणा जगत्‌सिंह द्वितीयके शासनसमयमें मोगल-साम्राज्यकी गिरी दशा और सब प्रकार सुयोग तथा सुविधा रहते भी वे स्वाधीन न हो सके।

इस समय निजामुलमुल्क अधीनताकी बेड़ी काटकर बिलकुल स्वाधीन हो गये। देहलीके बादशाहका सेनापति * उनकी स्वाधीनता नष्ट करनेका उद्योग करनेके लिये गया; परन्तु स्वयं नष्ट हो गया। चतुर निजामने उस अभागी सेनापतिका कटा हुआ सिर बादशाहके पास भेजा और धोखा देनेके लिये यह कहला भेजा कि "यह दुष्ट राजद्रोही हो गया था; इसलिये इसका सिर काटकर हुजूरकी सेवामें भेजता हूं।"

इस स्थानपर पाठकोंको समझ लेना चाहिये कि कमजोर मोहम्मदशाह

* इस सेनापतिका नाम मुबारिज था। निजामने अपनी स्वाभाविक चतुरतासे पहले उसकी सेनामें फूट पैदा करनेका उद्योग किया था। जब इस उद्योगमें सफलता न हुई तब खुलेआम युद्ध किया।—देखिये एलफिन्सटन सा०का इतिहास।

निजामुलमुल्कके चित्तका हाल अच्छी तरह समझ सका था; परन्तु इस अनुचित कार्यके लिये उनको दण्ड देनेकी सामर्थ्य उसमें नहीं थी। अपने राज्यकी स्वाधीनता दृढ़ करके निजामने राजपूतोंसे मैत्री और एकता की और मरहठोंको मालवा तथा गुजरातमें अपनी विजयिनी सेना ले जानेके लिये उत्साहित किया।

महाराष्ट्रीय वीर बाजीरावने अपना दल लेकर सबसे पहले मालवे पर आक्रमण किया और वहांके शासनकर्त्ता दयाराम बहादुरको † लड़ाईमें मारकर निजामकी इच्छा पूरी की। इसके बाद मालवाका अधिकार अम्बरनरेश महाराज जयसिंहको सौंपा गया; परन्तु उन्होंने स्वयं उसे न लेकर बाजीरावको दे दिया। इस प्रकार मालवा पर मरहठोंका अधिकार हुआ। बहुत शीघ्र गुजरातको भी यही अवस्था हुई। इससे पूर्व मोगल बादशाहने राठौड़ोंको गुजरातका अधिकारी बनाया था; परन्तु वह अधिपति प्रतिज्ञाका पालन न कर सका इस कारण अजितसिंहके पुत्र अमरसिंहने उस राज्य पर आक्रमण किया और वहांके हाकिम सरबुलन्दखांको मार भगाया। इसी अवसर पर दुर्जय मरहठोंने गुजरात प्रदेश पर आधिपत्य जमाया। राठौड़नरेश अभयसिंहने यह अवस्था देखकर भी मानों न देखी ‡। उन्होंने गुजरातके केवल उत्तर भागके कुछ जिले अपने राज्यमें रखे।

जिस समय राजस्थान और दक्षिण प्रान्तकी राजनैतिक स्थिति इस प्रकारकी थी उस समय बंगाल बिहार और उड़ीसाका संयुक्त राज्य नवाब शुजाउद्दौलह और उसके प्रतिनिधि अलीवर्दीखां आनन्दके साथ भोग रहे थे। इधर अवध राज्यका

† दयाराम बहादुर मालवाके पूर्व शासनकर्त्ता गिरिधरदासका भतीजा था।

‡ अभयसिंहने बिना लड़े भिड़े गुजरातराज्य नहीं छोड़ दिया था। इस समय उनको बहुत खूनखराबी करनी पड़ी थी और कष्ट उठाना पड़ा था। सन् १७३१ ई० के अप्रेल महीनेमें बाजीरावने दुबारीको परास्त करके गुजरात पर अधिकार किया और अन्तमें उसका अधिकार पिलाजी गायकवाड़को मिला। यही पिलाजी प्रसिद्ध गायकवाड़ कुलका पूर्वपुरुष हो गया है। अभयसिंहने इसको चुपचाप मारकर गुजरात राज्य लिया था; इसपर बहुत क्रुद्ध होकर इसके पुत्र और भाइयोंने अभयसिंह पर चढ़ाई की। तब अभयसिंहको गुजरात छोड़ना पड़ा। Elphinstone's History of India P. 703—705.

अधिकारी सआदतखांका पुत्र नवाब सफदरजंग था *। यद्यपि मोगल बादशाह की कृपासे सआदतखांने अवधकी नव्वाबी पाई; परन्तु दुष्टने इस कृपाका बड़ा अनुचित बदला चुकाया। बात यह थी कि वह कृतघ्न और विश्वासघातक था। इसी दुष्टने अत्याचारी नादिरशाहको भारतमें बुलाकर मोगल बादशाहतको नष्ट भ्रष्ट कराया।

जब मालवे और गुजरातमें महाराष्ट्र प्रभुता जम गई तब विजयी मरहठे अपना अधिकार बढ़ानेका निश्चय करके टिड्डियोंकी तरह एकत्रित होकर नर्मदा के पार उतरे और सर्वत्र उत्तर प्रदेशमें फैलने लगे। उनकी वीरताकी आंच पाकर कई ठिठरी और दबकी हुई सामान्य सामान्य जातियां भी जोशमें आईं और उनका साथ देकर प्रसिद्धि तथा प्रशंसा प्राप्त की। शान्तिके साथ जीवन व्यतीत करनेवाले खेतिहरोंने † हल और बैल त्यागकर तलवारों तथा घोड़ों से काम लिया और गड़ेरियोंने § भेड़ हांकनेकी टेढ़ी लाठियां छोड़कर हाथमें भाले पकड़े। जो सम्प्रदाय इस प्रकार उत्साहित हुए उनमें होलकर सिन्धिया और पँवार ‡ अधिक प्रसिद्ध हैं। खूब सहायता और बल प्राप्त करनेके बाद बलवान् मरहठोंने कमजोर राजपूतोंके राज्योंपर चढ़ाइयां करना और लूट पाट मचाकर अपनी बस्तियां बसाना प्रारम्भ किया। आवश्यकतासे या सुयोग पाकर वे जबतक आपसमें एकता रखकर युद्ध करते रहे तबतक कोई उनका जोर दबानेमें समर्थ न हो सका;—जबतक उनमें एकता थी तबतक किसीके रोके वे न रुके।

वीरवर (प्रथम) बाजीराव मरहट्ठा दलको स्वयं बढ़ाकर सन् १७३५ ई० में सबसे प्रथम चम्बलके पार उतरे; फिर देहलीके दरवाजे तक पहुंचे। वहां उन्होंने

* देखिये हमारा लिखा "अवधकी बेगम" नामक ऐतिहासिक तथा राजनैतिक उपन्यास।

† सिन्धियाके पूर्वज कृषक थे।

§ "होलकर" गड़ेरिये (भेड़ बकरी चरानेवाले) थे।

‡ मालवापर आक्रमण करनेके समय बाजीरावने ओदाजी पँवार, मल्हारराव होलकर और रणजी सिन्धियाको सेनापति बनाया। इन तीनोंने समय पाकर प्रधानता प्राप्त की और एक एक विख्यात वंश प्रतिष्ठित किया।

खूब ही पराक्रम दिखाया। आखिर कमजोर बादशाहने "चौथ" (राज्यकी आमदनीका चौथा भाग) देकर अपना बचाव किया। बादशाहकी यह भीरुता देखकर निजामके मनमें अनेक प्रकारकी शङ्काएँ उठने लगीं। यह आशङ्का करके कि बादशाह पर विजय प्राप्त करके कदाचित् वीर मरहठे हमारे राज्यपर भी आक्रमण करेंगे, उन्होंने उनको मालवेसे भगानेका निश्चय किया। निजाम भली भांति समझ गये थे कि जब एकबार मरहठोंके पांव पक्की रीतिसे मालवेमें जम जायँगे तब उनको वहांसे हटाया नहीं जा सकेगा; बल्कि तब मरहठे उत्तर देशसे उनका सब सम्बन्ध तोड़ देंगे। ये बातें विचारकर निजामने मालवा पर आक्रमण और बाजीरावको पराजित करके ऊपर लिखी आशङ्कासे अपने मनको स्थिर किया। विजयी निजाम पराजित मरहठे वीरोंको उस प्रदेशसे निकाल ही रहे थे कि इतनेमें खबर आई कि नादिरशाह अपनी विशाल सेना लिये हुए भारत पर चढ़ाई करनेको आया है। सुनते ही निजामके मनमें एक नया डर समा गया। मरहठोंको छोड़कर वे अपने राज्यको लौटे।

जिस समय † नादिरशाहके प्रचण्ड डङ्केकी आवाज भारतके पश्चिम प्रान्तमें सुनाई दी, मोगल बादशाहकी शान और पराक्रमका चिराग प्रायः बुझ चुका था। मोगल बादशाह मोहम्मदशाहको राजपूतोंसे सहायता पानेकी बड़ी आशा थी; पर उनसे उसे बिलकुल सहायता न मिली। जिन राजपूत वीरोंकी सहायतासे भारतभूमिमें मोगल बादशाहतकी जड़ जमी थी, जिन्होंने यहां मोगल-साम्राज्य स्थिर रखनेके लिये अनेक बार अपना खून बहाया था, आज इस सङ्कटके समय उनमेंसे एक भी उच्चश्रेणीका व्यक्ति सहायता करनेको तैयार नहीं हुआ। अतएव कर्नालकी लड़ाईमें मोहम्मदशाह हारा;—मोगल बादशाहतका नाश हो गया।

कर्नाल-युद्धका बुरा परिणाम देखकर निजाम और सआदतखांको बहुत डर हुआ। विजयी नादिरको रोकनेका विचार करके उन्होंने मोगल सेनाके साथ अपनी सेनाएं भी मिलाईं; पर उनका मतलब न निकला। मोगलसेनापति अमी-

† टाड साहब लिखते हैं कि सन् १७४० ई० में नादिरशाहने भारतमें प्रवेश किया; परन्तु एलफिन्स्टन साहबके इतिहास और नादिरनामेसे मालूम होता है कि सन् १७३८ ई० के नवम्बर महीनेमें नादिरने भारत पर चढ़ाई की थी।

कुलउमरा लड़ाईमें मारा गया, वजीर कैद हुआ और मोहम्मदशाहको शत्रुओंके आगे दबना पड़ा। दुष्ट वजीरकी कृतघ्नता और विश्वासघातकताने बादशाहको इतनी दुर्दशा भोगनी पड़ी! तब निजामके द्वारा उसने नादिरके पास सन्धिकी प्रार्थना भेजी। सन्धि होना एक प्रकार स्थिर हो गया; परन्तु दुष्ट सआदतखांने सब बातें व्यर्थ कर दीं। यह कहकर उसने नादिरका लोभ बढ़ाया कि "निजामने आपको धोखा दिया। खजानेमें जितना बतलाया गया है उससे अधिक धन है।" उसने यह भी कहा कि "छुटकारेके लिये निजामने जितना धन देनेको कहा है उतना तो मैं स्वयं अपने खजानेसे दे सकता हूं।" उसकी बातें नादिरको सच मालूम हुईं इसलिये उसका अधिक धन पानेका लोभ और भी बढ़ गया। निजामकी मार्फत जो सन्धि हुई थी वह टूट गई—और नादिरने देहलीके खजानेकी कुञ्जी मांगी! मोहम्मदशाहकी आंखें खुलीं। लोभी नादिरके स्वीकृत सन्धिपत्र पर विश्वास करके उसने सोचा था कि अब अधिक कष्ट न उठाना पड़ेगा; परन्तु उसकी आशा पूरी नहीं हुई। सन्धि तोड़कर नादिर अभागी मोहम्मदशाहको अपने पड़ावमें ले गया और सन् १७४० ई०में के मार्च महीनेकी आठवीं तारीखको वीरवर तैमूरके (देहलीके) तख्त पर स्वयं बैठकर उसने अपने नामका सिक्का जारी किया। सिक्कोंपर इस आशयका वाक्य खुदा हुआ था,—

"नादिरशाह, शाहंशाहे वक्त।"

मोगल-साम्राज्यके भीतरी विप्लवमें बहुत अधिक धन व्यय होने पर भी, तथा राज्य पानेकी लालसा रखनेवाले प्रत्येक व्यक्तिसे बहुत द्रव्य घूसमें मिलने पर भी, खजानेमें जो विपुल धन संगृहीत था उसे पाकर लोभीसे लोभी आदमी भी तृप्त हो जाता; परन्तु आश्चर्यकी बात है कि नादिरको तृप्ति न हुई बल्कि उसका लोभ बढ़ गया! उसने चारों ओर इस बातकी सूचना प्रकाशित की कि 'यदि ढाई करोड़ रुपये और न मिलेंगे तो मैं भारत छोड़कर न जाऊंगा; अतएव जैसे हो वैसे इतने रुपये मिलने चाहियें।" यह सूचना प्रकाशित होते ही यमदूतोंकी तरह उसके ईरानी सैनिक शहरमें चारों ओर नगरनिवासियोंको लूटने और "कत्ले आम" करने लगे! दुःखित नगरनिवासियोंने तंग आकर इधर उधर भागना आरम्भ किया। पर भागकर वे कहां जाते? कौन उन्हें बचाता? कोई नहीं। नादिर-

शाहकी सेनाकी आगी आज सबका बल नष्ट हो गया था। अतएव बचानेवाला कोई नहीं था! सभी प्राण बचानेके लिये इधर उधर भागते थे; लड़ने या मुकाबला करनेका साहस किसीको नहीं होता था। पर भागनेसे भी उनका निस्तार नहीं होता। वे जहां जहां भागते पिशाच सैनिक उनके पीछे पीछे जाते और जो कुछ उनके पास पाते सब छीन लेते; उनकी स्त्रियों पर अनेक प्रकारके अत्याचार करते। हाय! वह समय देहलीके लिये मानों प्रलयका समय था! प्राण और मान मर्यादाका बेतरह नाश होता था; बेहिसाब लूट मचती थी। जो जरा ऊंची श्रेणीके थे, जो आबरूको प्राण और धनसे अधिक समझते थे, वे आबरू बचानेका दूसरा कोई उपाय न देखकर अपनी स्त्रियोंको मारकर आप ही अपनी हत्या कर डालते थे! सो, उस समय आत्महत्याके सिवा रक्षाका अन्य कोई उपाय नहीं था।

इसी समय कोलाहल मचा कि नादिरशाह मारा गया। क्षण भरमें यह किम्बदन्ती देहली नगरीमें चारों ओर फैल गई। देखते ही देखते असंख्य नगर-निवासी हाथोंमें नङ्गी तलवारें लिये हुए अपने घरोंके बाहर निकल आये और ईरानी सेनिकोंको मारने काटने लगे। किसीको अपने प्राणोंकी परवा या अपने आत्मीय बन्धुओंके मरने जीनेकी चिन्ता नहीं थी। बदला लेनेके लिये सभी शत्रुओं पर टूट पड़े और उनका संहार करने लगे। उस समय दोनों दलोंमें बड़ी गहरी लड़ाई हुई;—नगरनिवासियों और ईरानियोंकी लाशोंसे देहलीके रास्ते भर गये *। खूनसे ज..।। गोली हो गई। थोड़ी ही देरके बाद जब नादिरके कानोंतक यह खबर पहुंची तब वह एक मस्जिदके ऊपर जा चढ़ा और वहांसे अपने निरुत्साह सैनिकोंको उत्साहित करने लगा तथा आज्ञा दी कि नगरके छोटे बड़े स्त्री पुरुष सबको कत्ल करो! यह कठोरतम आज्ञा पाते ही उसके सैनिक द्वार द्वार पर जा जाकर "कत्ले आम" करने लगे। चारों ओर रोना चिल्लाना सुन पड़ने लगा। "रास्तोंसे खूनकी धारा बह चली!" पिशाच ईरानी सैनिक

* हसन नामक एक मुसलमान जिसने अपनी आंखोंसे यह हत्याकाण्ड देखा था लिखता है कि उस समय कुछ हिन्दुओंने ७०० ईरानियोंका संहार कर डाला था। स्काट साहबके इतिहासमें मारेजानेवालोंकी संख्या १००० लिखी है।

नगरनिवासियोंकी सब चीजें लूटकर उनके घरोंमें आग लगाने लगी और उन जलते हुए मकानोंकी छतोंपर मृत, अर्द्धमृत और जीवित व्यक्तियोंको पकड़ पकड़कर डालने लगी। ओफ्! उस समय देहलीकी अवस्था भीषण श्मशानसे भी बुरी और नरककुण्डके समान थी! † इस वीभत्स और शोकमें डालनेवाले भयानक दृश्यमें यदि कुछ थोड़ेसे सन्तोषकी बात देखी गई तो केवल दुष्ट सआदतखांका शोचनीय परिणाम देखा गया।

इस भयानक 'कत्ले आम' के समय नादिरशाहने दुष्ट सआदतखांके गुमाश्तेको आज्ञा दी कि "तुम्हारे और सआदतखांके पास जर वगैरह जो दौलत है उसको

† कहा जाता है कि इस "कत्ले-आम" के समय नादिरशाह रुकनुद्दौलह नामक छोटी मसजिदमें बैठा था। मोहम्मदशाह और उसके सरदार आखिर वहीं उसके पास गये। वे बड़ी देरतक चुपचाप उसके सामने सिर झुकाये खड़े रहे। कुछ देर बाद नादिरने पूछा, क्या कहना चाहते हैं? तब मोहम्मदशाहने आंखोंमें आंसू भरकर कातर शब्दोंमें प्रार्थना की—"मेरी रिआयाको जान बचाइये।" इस भतानक कत्लेआमके विषयमें जितने वृत्तान्त मिलते हैं सबसे उत्तम हसनका लिखा वृत्तान्त है। "सैरुल-मुताखरीन" नामक ग्रन्थके लेखकने भी हसनके लिखे वृत्तान्तका अनुमोदन किया है। इसके अतिरिक्त सरबुलन्दखांके यहां एक हिन्दू कर्म्मचारी था; उसने हसनके लिखे विवरणके आधार पर एक पुस्तक रची है; उसकी पुस्तकका बिलकुल अवलम्बन करके फ्रेजर साहबने "नादिरशाहका इतिहास" लिखा है। अस्तु, हसन लिखता है कि डेढ़ पहरतक यह 'कत्ले आम' हुआ और इसमें असंख्य लोग कत्ल हुए। फ्रेजर साहब अनुमान करते हैं कि १ लाख २० हजार और डेढ़ लाख मनुष्योंके बीचमें मारे गये। "नादिरनामा' के लेखकने लिखा है कि प्रायः दिन भर यह हत्याकाण्ड जारी रहा और इसमें ३० हजार व्यक्तियोंका संहार हुआ। स्काट साहब निश्चय करके अपने इतिहासमें लिखते हैं कि केवल ८ हजार मनुष्य हत हुए; परन्तु किस आधार पर उन्होंने यह बात लिखी है सो मालूम नहीं होता। एलफिन्सटन साहब स्काट साहबके लेखको गलत बताते हैं और कहते हैं कि यह कभी सत्य नहीं हो सकता कि २० हजार खूंरेज सिपाहियोंने इतने अधिक समयमें केवल ८ हजार लोगोंको मारा।

एक सहीह फेहरिस्त बनाकर पेश करो, वरना कत्ल किये जाओगे।" इसके बाद निजामने जो ढाई करोड़ रुपये जमानतमें देने चाहे थे इतने रुपये नादिरने अकेले वजीर सआदतखांसे मांगे। यह कठोर आज्ञा पाते ही सआदतखांकी आंखोंके आगे अँधियारी छा गई; उसकी सब आशाएँ नष्ट हो गईं! अभिमानमें डूबकर वह आजतक समझ नहीं सका था कि नादिरको बुलाकर उसने अपने पांवोंमें आप ही कुल्हाड़ी मारी है; पर आज उसके ज्ञाननेत्र खुले। आज वह अच्छी तरह समझ गया कि नादिरको बुलाकर उसने सब ओरसे अपनी खराबी की। शोक, दुःख, डर और निराशतासे उसका हृदय मथित होने लगा। जिधर वह दृष्टि डालता उधर ही उसे डरानेवाले सामान देख पड़ते। कदाचित् इन्हीं कठोर कष्टोंके कारण, या नादिरके डरसे, अभागे सआदतने आखिर जहर खाकर अपने प्राण आप दे दिये! * उसके दीवान राजा मजलिस रायने भी उसीका अनुकरण कर नादिरके क्रोधकी आगसे अपनेको बचाया। इसके बाद नादिरने मोहम्मदशाहका सन्धिपत्र स्वीकार किया और भारतका सर्वस्व लूटकर वसन्तऋतुमें दुर्दशाग्रस्त देहली नगरीसे अपने देशको चला गया §। इस सन्धिपत्रके अनुसार

* डो साहबने अपने "हिन्दुस्थान" नामक ग्रन्थमें नादिरशाहके विषयमें जो बातें लिखी हैं उन्हींमें यह भी लिखा है कि सआदतखां और आसफजाह दोनोंने नादिरको भारतमें बुलाया था और इन्हीं दोनोंकी विश्वासघातकतासे मोहम्मदशाह कर्नालकी लड़ाईमें हारा। कहा जाता है कि नादिरने इन दोनोंकी दाढ़ियों पर थूककर इनको अपने सामनेसे हटवा अथवा अपने दरबारके बाहर निकलवा दिया था। इस अपमानके रञ्जसे अपना छुटकारा करनेके लिये दोनोंने आत्महत्या करनेका विचार किया। दोनों एक दूसरेके विरोधी थे और दोनोंको एक दूसरेका विश्वास नहीं था। अतएव कौन क्या करता है यह जाननेके लिये दोनोंने एक दूसरेके घर अपने अपने जासूस भेजे। आसफजाह अधिक चतुर था; वह एक प्रकारकी प्राणकी हानि न पहुंचाने किन्तु बेहोश कर देनेवाली दवा पीकर जमीन पर पड़ रहा, जैसे मर गया हो। मूर्ख सआदतखांने उसे मृत समझकर स्वयं सचमुच जहर खा लिया और इस प्रकार अपने प्राणोंसे हाथ धोया।

§ जानेका समय ज्यों ज्यों निकट आता गया त्यों त्यों ईरानियों (नादिरके

काबुल, ठट्ठ, सिन्ध, मुलतान आदि पश्चिमके सब राज्य नादिरके अधिकारमें अथवा उसके ईरान राज्यके अन्तर्गत हो गये। भारतवर्षके इस घोर विप्लव और सङ्कटके समय भारतवासियोंकी क्या अवस्था हुई थी उसका हाल भारतवर्षके एक इतिहासलेखकने यों लिखा है,—"हिन्दुस्थानके निवासी इस समय केवल अपने बचावकी चिन्ता करते थे। जो लोगोंके बाहर निकल आते वे फिर उस ओर देखते भी नहीं और जो व्यक्ति केवल स्वार्थको ही मुख्य समझता वह अपने मनुष्य भाइयोंसे बिलकुल सहानुभूति प्रकाश न करता। स्वार्थपरता आत्म और परधर्म्म के विरुद्ध है। नादिरशाहकी चढ़ाईके समय सभी हिन्दुस्थानी स्वार्थपरताके वशमें थे। इस कमजोरीके कारण भारतवासियोंका जो ध..... बल कमजोर हुआ वह फिर मजबूत होने नहीं पाया। अतएव वे अपने सुख और स्वाधीनतासे वञ्चित हो रहे।"

सैनिकों) की निष्ठुरता बढ़ती गई। इस विषयमें एक प्रत्यक्ष साक्षीने जो कुछ लिखा है उसे प्रमाणके लिये हम यहां लिखते हैं,—"पिछले दिनकी याद नगर-निवासियोंको कष्ट पहुंचा रही थी। अबतक कत्लेआम था, परन्तु अब विशेष विशेष व्यक्तियोंकी हत्या आरम्भ हुई। नगरके प्रत्येक घरसे हृदयभेदी रोना चिल्लाना और विलाप करना सुन पड़ने लगा। पेन्शन विभागके गुमाश्ते वसन्तरायने प्रतिष्ठा बचानेके लिये अपने परिवारवालोंको मारकर अपने हाथोंसे अपनी हत्या कर ली। खल्कयारखांने भी अपने कलेजेमें कटार मार ली। इसी प्रकार अनेकोंने आत्महत्या की। माननीय प्रधान नगररक्षक (मैजिस्ट्रेट) कोड़ोंकी मार खाकर अपमानित हुआ। नींद और शान्ति दोनों नगरसे भाग गईं। दरबारी निर्दयतासे पीटे जाने लगे। अन्तमें दुष्टोंने शाही फर्राशखानेमें आग लगा दी। प्रायः एक करोड़ मूल्यकी चीजें जल गईं। अन्न मिलना बहुतही कठिन हो गया। मोटे चावल रुपयेके दो सेर बिकने और मरोसे असंख्य लोग रास्तोंमें मरने लगे। नगरनिवासी डरे हुए जङ्गली जन्तुओंकी तरह भाग भागकर अत्यन्त छिपे हुए स्थानोंमें बसने लगे। इसपर भी बचाव नहीं हुआ। इस प्रकार चार पांच करोड़ लोग मृत्युके शिकार हुए।" अप्रेल महीनेकी पांचवीं तारीखको बादशाहके भाण्डारसे नादिरकी मुहर लाई गई और "उसके प्यारे भाई" के प्रति भक्ति तथा राज्यमें शान्ति रखनेके फर्मान सब सामन्त राजाओंके पास भेजे गये। फर्मानोंमें जो

भारतवर्षकी इस विप्लवकी समयमें—भारतवर्षके राजनैतिक इतिहासके इस घटनापूर्ण समयमें – राजपूत वीरोंने अपने प्राचीन राज्योंको अपने हाथोंसे जाने नहीं दिया । जाने देना तो दूर था, बल्कि छ:सौ वर्षके मुसलमानी शासनमें राजस्थानके तीनों प्रधान राजपूत-कुलोंमेंसे दूसरे दो—मारवाड़ और अम्बर—ने कौशल और वीरतासे छोटे छोटे प्रदेशोंसे जो कई * स्थायी राज्य बना लिये थे वहांके अधिकारी अबतक ब्रिटिश गवर्नमेण्टसे मैत्री भाव रखकर स्वाधीनतापूर्वक रहते हैं । ईस्वी १० वीं शताब्दीके प्रारम्भमें जिस समय महमूद गजनवीने मेवाड़ पर आक्रमण किया था उस समय वहांकी चारों ओरकी सीमा जितनी विस्तृत थी आज † १७ वीं शताब्दीके बाद भी उतनी ही विस्तृत है । यद्यपि बूंदी, आबू, ईडर, देवल आदि कई कर देनेवाले राज्य राणाजीके अधिकारसे बाहर हो गये हैं, तोभी उनका प्राचीन राज्य प्राय: पूरा पूरा विद्यमान है । पश्चिममें गोदार प्रदेश की हरी भरी भूमि मेवाड़की प्राकृतिक सीमा अरावली पर्वतमालाको पार कर दूर नीचे मैदानतक राणाजीका अधिकार प्रकट करती है; चम्बल नद पूर्वीय

राणाजी और मारवाड़, अम्बर, नागोर तथा सताराके राजाओं और पेशवा बाजी-राव इत्यादिके पास भेजे गये थे—यह बात लिखी थी, "हममें और हमारे प्रिय भाई मोहम्मदशाहमें फिर सद्भाव और मैत्री हुई; अतएव हम दोनों 'दो कालिब एक जान' की तरह हुए । हमारे प्रिय भाई इस बड़े साम्राज्यके सिंहासन पर पुन: बैठते हैं और दूसरे देशों पर विजय प्राप्त करनेके लिये हम इस देशसे जाते हैं । अब आपलोगोंका यह कर्त्तव्य है कि आपके पूर्वज तैमूरके कुलके प्राचीन अधिकारियोंको जिस राजभक्ति और सम्मानकी दृष्टिसे देखते थे उसी श्रद्धा भक्ति और सम्मानकी दृष्टिसे आप हमारे प्रिय भाईको देखें । ईश्वर न करे—यदि आपलोगोंके विद्रोह करनेकी खबर हमलोगों तक पहुंची तो हम संसारसे एक-दम आपका नामो निशान ही मिटा देंगे ।"—*Memoirs of Eradut Khan.*—Scott's History of the Dekhan, Vol. ii, Page 213.

* बीकानेर और किशनगढ़ मेवाड़के शाखाराज्य हैं और मछेरी अम्बरका है । शेखावाटीको भी अम्बर (वर्त्तमान जयपुर) का शाखाराज्य कह सकते हैं ।

† आज—अर्थात् जिस समयकी यह बात है ।

सीमा है; उत्तरमें खरी नदी अजमेर और मेवाड़के बीच बहती है और दक्षिणकी सीमा महाराष्ट्र-पीड़ित विस्तृत मालवा राज्य है। इस चतु:सीमाबद्ध प्रदेशको लम्बाई १४० मील है और चौड़ाई १३० मील। इसमें १० हजार गांव और कसबे हैं। मेवाड़की भूमि रत्नोंसे भरी हुई है; इसके खेत बहुत ही उपजाऊ हैं; खेतिहर खेतीके कामोंमें बड़े निपुण हैं और व्यापारी खूब धनाढ्य तथा व्यापारकुशल हैं। सुखी प्रजाओंसे प्रति वर्ष डेढ़ करोड़से अधिक कर उतरता था। राजभक्त और अनुरक्त सामन्त तथा सरदार शत्रुओंके आक्रमणोंसे मेवाड़की रक्षा करते थे। ऊपर लिखे लम्बे और कठोर विप्लवके बाद स्वाधीन और प्राचीन मेवाड़ राज्यकी ऐसी ही अवस्था थी; अब हम क्रमश: वर्णन करते हैं कि मरहठोंके कठोर आक्रमणके कारण आधी शताब्दीमें ही उसकी कैसी बुरी दशा हो गई।

जिस दिन मोहम्मदशाहने अपने दुष्टबुद्धि और कुचक्री मंत्रियोंकी सलाहमें पड़कर मरहठोंको अपने साम्राज्यकी आमदनीका चौथा हिस्सा दिया, उसी दिन विशाल राजस्थानमें मरहठोंके अधिकारका रास्ता साफ हुआ ¶। राजस्थान प्रदेश मोगल बादशाहके साम्राज्यके अन्तर्गत था; अतएव जब मरहठोंने स्वयं बादशाह से ही "चौथ" लिया तब निस्सन्देह ही बादशाहके अधीन जितने राज्य थे सबकी चौथाई आमदनी लेनेका उनको हक हो गया। वे विजयी थे; जिसके विरुद्ध अपनी सेना ले जाते वही नम्रताके साथ "चौथ" देना स्वीकार कर लेता। ऐसी अवस्थामें विजित राजाओंके ऊपर केवल जोर जबर्दस्ती जताकर ही वे अपना मतलब निकालते थे या नहीं, इसका पता लगाना कठिन है; पर यह तो स्पष्ट है कि मोहम्मदशाहसे कर लेना वे अपने मतलबके सिद्ध करनेका एक द्वार समझते थे।

महाराष्ट्र लोग ज्यों ज्यों विजय प्राप्त करते गये त्यों त्यों राजपूतोंके मनमें उनकी ओरसे चिन्ता बढ़ती गई। इस चिन्तासे छुटकारा पानेके लिये उन्होंने सबसे पहले आपसमें एकता की। उनकी सदाकी रीतिके अनुसार विवाहोंके सम्बन्धके द्वारा यह एकता की गई। राणा जगत्सिंहने मारवाड़के उत्तराधिकारी विजयसिंहके साथ अपनी कन्याका विवाह कर दिया और यह सम्बन्ध करके

¶ सन् १७३५ ई०।

मारवाड़ तथा अम्बरके राजकुलोंमें जो झगड़ा चला आता था उसे मिटा और दोनोंको एक कर दिया। उदयपुरके दरबारमें एकता हुई †; परन्तु जैसा कि प्रायः हुआ करता था इससे सर्वसाधारणका कोई उपकार नहीं हुआ; क्योंकि साम्प्रदायिक झगड़े फिर खड़े हुए और एकता टूट गई; बल्कि ऐसा हुआ कि

† इस समय राजस्थानके भिन्न भिन्न राजाओं, राजकुमारों और राजपुरुषोंने राणाजीके पास कई पत्र भेजे थे। वे पत्र बड़े मनोहर हैं। खासकर उनको पढ़ने से यह अच्छी तरह विदित हो जाता है कि राणाजीके ऊपर दूसरे राजपूत राजाओंकी कितनी दृढ़ भक्ति और श्रद्धा थी। उनमेंसे कुछ पत्रोंका आशय नीचे प्रकाशित किया जाता है।

प्रथम पत्र।

मारवाड़के राजकुमार विजयसिंहकी ओरसे श्री ३ महाराणाजीके समीप।

"महाराणा जगत्सिंहको मेरा सविनय नमस्कार विदित हो। रावत केशरीसिंह और बिहारीदासको मेरे निकट भेज और शुभ विवाह सम्बन्ध करनेकी आज्ञा देकर आपने मुझे बहुत अनुगृहीत किया। आपकी आज्ञा आपकी सन्तान को शिरोधार्य है। मैं आपका दास हूं। आपकी जो आज्ञा हो सब मुझे स्वीकार है। अब मैं आपकी सन्तान हूं और जबतक जीवित हूं तबतक आपहीका रहूंगा। यदि मैं सच्चा राजपूत होऊँ तो मेरा सिर आपके लिये है। २० सहस्र राठौड़ आजसे आपके दास हुए। यदि मैं इसमें चूकूं, तो सर्वशक्तिमान् परमेश्वर मुझे दण्ड देगा। जिनसे मेरा खूनका सम्बन्ध है, अर्थात् जो मेरे हैं, वे भी आपकी आज्ञा में रहेंगे। अस्तु, अब निवेदन यह है कि इस शुभ विवाहसे जो फल उत्पन्न होगा वह राजसिंहासनका अधिकार पावेगा; और यदि कन्या हो और उस कन्याको यदि मैं तुर्कके हाथ दूं तो मैं सच्चा राजपूत नहीं। आपकी सलाह लेकर वह किसी योग्य व्यक्तिको दी जायगी। यदि स्वयं श्रीभाईजी, (उनके पिताका उपनाम है) या और कोई माननीय व्यक्ति ऐसा करनेका अनुरोध करे, तौभी मैं ईश्वरके नाम शपथ करके कहता हूं कि कभी राजी न होऊँगा। दूसरा कोई चाहे इस विवाहमें सम्मति न दे, पर मैं देता हूं।— आषाढ़ सुदि पूर्णिमा, बृहस्पतिवार, संवत् १७९१ (सन् १७३५—३६ ई०)।"

जिस समय राजपूतोंमें इस सन्धिकी चर्चा चल रही थी उस समय पुरानी एकता का बुरा फल निकलकर उनमें अनैक्य पैदा करना चाहता था। आगे इस बात की सचाई मालूम होगी।

नोट—बख़्तसिंहके पुत्र कुमार विजयसिंहके शुभ विवाहका यह पत्र "किशन-विलास" महलके बरामदेमें रावत केशरीसिंह और पाञ्चोली विहारीदासने तैयार कराया और पाञ्चोली लालजीने इसे लिखा।

दूसरा पत्र।

विजयसिंहकी ओरसे राणा जगत्‌सिंहके नाम।

"यहां सब कुशल है। अपनी कृपा और मित्रता सदा समान रखियेगा और अपने कुशलसमाचारकी सूचना दीजियेगा। उस दिन आप अमूल्य होंगे। आपने मुझे सच्चा राजपूत बना दिया है। जहांतक मेरी शक्तिमें है मैं आपकी सेवा करनेमें त्रुटि नहीं करूंगा। आप समग्र जातिके पिता हैं; योग्यतानुसार सबको पुरस्कार दिया करते हैं; जो आपके चारों ओर हैं उनका आप रक्षण और पालन करते हैं;—शत्रुका नाश करते हैं; विद्यामें आप बड़े और बुद्धिमें ब्रह्माकी तरह हैं। जगदीश्वर आपको सुखी रखे।—आषाढ़, त्रयोदशी।"

तीसरा पत्र।

राजा बख़्तसिंहकी ओरसे राणा जगत्‌सिंहके समीप।

"महाराणा श्रीजगत्‌सिंहजीको बख़्तसिंहका नमस्कार विदित हो। आपने मुझको वास्तविक राजपूत बना दिया है और इससे आपकी कृपा संसार पर प्रकट है। आप देखेंगे कि जहांतक शक्ति है किसी कामके करनेसे मैं पीछे न हटूंगा। जिस दिन आपके दर्शन होंगे उस दिन मुझे असीम सुख होगा। आपसे मिलने को हृदय बहुत ही उत्सुक है।—आषाढ़, एकादशी।"

चौथा पत्र।

सवाई जयसिंहकी ओरसे राणाजीके नाम *।

"महाराणाको सवाई जयसिंहका यथोचित। दीवानजीकी आज्ञाके अनुसार

* टाड साहब लिखते हैं कि यह पत्र राणाजीके नाम भेजा गया था; परन्तु विचार करनेसे मालूम होता है कि यह अभयसिंहके नाम भेजा गया था; क्योंकि

पराक्रमी मरहठोंके द्वारा मालवा हस्तगत होने और वहांसे "चौथ" मिलने पर उनके सरदार बाजीराव दलबलके सहित मेवाड़ राज्यमें पहुंचे। उनके वहां पहुंचनेकी खबर पहुंचते ही समग्र मेवाड़भूमिमें बड़ी व्याकुलता फैल गई। राणाजीने स्वयं न मिलकर दूतके तौरपर सालुम्ब्रा सरदार और प्रधान मन्त्री वि-

मेरे और आप (मारवाड़के अभयसिंह) के बीच मैत्री हुई। हिन्दू वा मुसलमान किसीके लिये मैं अब यह मैत्री नहीं तोड़ूंगा। इस सम्बन्धपत्रमें ईश्वर मेरे आपके बीच है और श्रीदीवानजी साक्षी हैं।—आषाढ़ सुदि सप्तमी।"

पांचवां पत्र।

"आपका खास रुक्का मिला; प्रसन्नता हुई। जयसिंहका और मेरा सम्बन्धपत्र आपको मिला होगा। आपके आज्ञानुसार मैंने उनसे मित्रता कर ली है और इसमें कुछ सन्देह नहीं कि मैं इस मित्रताकी रक्षा कर सकूंगा; क्योंकि जब आप मेरे जमानतदार हैं तब इसमें कुछ गड़बड़ नहीं पड़ सकती। अब आप उनसे जमानत लें। चाहे आप मुझे अपना पुत्र भाई या बन्धु जो समझें, मैं आपहीका हूं। आपके सिवा मुझे भाई, बन्धु, ज्ञाति, गोत्र, किसीकी परवा नहीं है। आषाढ़, षष्ठी।"

छठा पत्र।

राणाजीके प्रति राजा अभयसिंहकी ओरसे।

"......ईश्वर हमारे सम्बन्धका साक्षी है। जो सम्बन्ध तोड़ेगा उसका अमङ्गल होगा। सुख, दुःख, सब समयोंके लिये हमने एकता की है; एकमन होकर एकताबद्ध रहेंगे; स्वार्थपरता करके एकता न तोड़ेंगे।—आषाढ़, तृतीया वद्द०।"

[अभयसिंह और बखतसिंह मारवाड़नरेश अजितसिंहके पुत्र थे। इनमें अभयसिंह पिताकी गद्दीपर बैठे और बखतसिंहने नागौर राज्यपर अधिकार किया। जिन विजयसिंहके साथ राणा जगत्सिंहकी कन्याका विवाह हुआ वे इन्हीं बखतसिंहके पुत्र थे। पीछे विजयसिंहने मारवाड़की गद्दी पाई।]

इसमें एक जगह "मेरे और आप (मारवाड़के अभयसिंह) के बीच मैत्री हुई" यह वाक्य है।

हारीदासको उनके पास भेजा *। इधर राजसभामें इस बात पर बहस होने लगी कि बाजीरावकी किस तरह अभ्यर्थना की जाय, उनको कौनसा आसन दिया जाय, इत्यादि। बहुत तर्क वितर्कके बाद अन्तमें स्थिर हुआ कि उनको राजसिंहा-

* मरहठोंके आक्रमणके समय राणा जगत्सिंहने अपने मन्त्री विहारीदास पाञ्चोलीको कई पत्र लिखे थे। उन पत्रोंसे उनके हृदयका भाव स्पष्ट प्रकट होता है; अतएव उनका आशय हम यहां प्रकाशित करते हैं,—

प्रथम पत्र।

"स्वस्ति श्री।—मन्त्रिप्रवर पाञ्चोलीजी! मेरी "जुहार" (क) जानना। आगे आपको याद क्षण भर भी मुझे नहीं भूलती। दक्षिणी विषयमें आपने बहुत उत्तम बन्दोवस्त किया; परन्तु यदि ऐसा होही जाय कि सङ्कट (ख) किसी प्रकार दूर न हो सके, तो देवलके पार इस सङ्कटका सामना किया जाय; निकटमें उचित नहीं है। सैनिकोंकी संख्या घटा दीजियेगा; परमेश्वरकी कृपासे धनकी कमी न होगी। गत वर्षकी तरह रामपुरके लिये प्रबन्ध कीजियेगा और दौलतसिंहको जताइगा कि ऐसा अवसर फिर नहीं आवेगा। राजमाता बीमार हैं। गरीरा और गज-माणिक अच्छे ढङ्गसे लड़े और सुन्दर गजने हजारों तरहके खेल दिखलाये (ग)। इस समय शोभारामको कैसे भेजें?—आषाढ़ षष्ठी; संवत् १७९१ (सन् १७३५)"

दूसरा पत्र।

"मुझे इसपर विश्वास नहीं होता; इसलिये जो रुपये वे मांगते हैं उनकी सूची और गवाह भेजिये। बाजीराव आ गये हैं। जमीनके अतिरिक्त मुझसे नकद लेकर भी वे अपना सम्मान बढ़ावेंगे। मेरे राज्यमें उन्होंने गड़बड़ मचाना आरम्भ कर दिया है और दूसरे राजाओंकी अपेक्षा मुझसे वे बीसगुना द्रव्य लेंगे। यदि

(क) राजपूतोंमें बड़े पदवालेके प्रति छोटे पदका मनुष्य बड़ेको सम्मानित करनेके लिये "मुजरा" लिखता है और बड़े पदका मनुष्य छोटे पदवालेको "जुहार"।

(ख) पेशवाके साथ युद्ध।

(ग) राणाजी राजकार्यों की अपेक्षा हाथियोंकी क्रीड़ामें अधिक आनन्द मानते थे। इस विषयमें विशेष बातें आगे मालूम होंगी।

उनके सामने बुन्देरानरेशके † बराबर बैठनेको स्थान दिया जाय। इसी स्थिरकी हुई बातके अनुसार बाजीराव गृहीत और सम्मानित हुए। शीघ्रही दोनों दलोंमें सन्धि हुई। उस सन्धिके अनुसार निश्चय हुआ कि राणाजी मरहठोंको कुछ नियमित वार्षिक कर * देंगे। उसमें स्थिर हुआ था कि दस वर्षों तक इस सन्धिपत्रके नियमानुसार राणाजी उनको कर देते रहेंगे; पर यह बात निभ न सकी। मरहठों ने मेवाड़की सब आमदनी हजम कर लेनेकी इच्छा कर सन्धिपत्रको रद कर दिया; अतएव सन्धि बिलकुल व्यर्थ हुई।

कुछ नियमित देना पड़े तो मैं दे सकूंगा। पिछले साल मल्हारराव आये थे; पर वे कुछ नहीं थे। बाजीराव उनसे बहुत बढ़कर शक्तिमान् हैं। ईश्वर यदि मेरी प्रार्थना सुने तो वे मेरे राज्य पर अधिकार नहीं करने पावेंगे। देवीचन्दसे विशेष बातें जानियेगा।—बृहस्पतिवार, सं० १७८२।

"होलीके अवसर पर जगमन्दिरमें खूब उत्सव हुआ था। पर नमक बिना भोजन किस कामका ?—और विहारीदासके बिना उदयपुर क्या ?"

तीसरा पत्र।

"आप जैसे (योग्य) व्यक्तिके रहते मुझे अपने राज्यके स्थायित्वके विषयमें कुछ भी शङ्का नहीं है। पर यह दरिद्रता कैसी ? कदाचित् आप पूछेंगे कि आपने क्या दोष किया है कि आपको उठते बैठते मेरी आज्ञाका ध्यान रखना पड़ता है। इसमें और कुछ मतलब नहीं है; रुपया ही सब कुछ है; वर्त्तमान गड़बड़ केवल आप ही मिटा सकते हैं; और सब प्रतिज्ञाएँ व्यर्थ हैं। आप कह सकते हैं—मेरे पास तो कुछ भी नहीं है; मैं क्योंकर सब गड़बड़ियां दूर कर सकता हूं ?—यद्यपि आप कुछ समयके लिये मुझसे दूर चले गये हैं तौभी सब समय ऐसा ही जान पड़ता है कि आप मेरे पास ही हैं; पर इस समय यदि और

---

† राजसिंहके पुत्र, भीमके वंशधर। बाजीरावको जो आसन दिया गया था वह पीछे अङ्गरेजोंके प्रतिनिधियोंके लिये नियत किया गया था।

* १६००००) रुपये वार्षिक कर नियत हुआ था। यह रुपया होलकर, सिन्धिया और पवारमें बराबर बराबर बटता था।

चतुर मरहठे बहुत छोटे सूईकेसे छेदमें प्रवेश कर क्रम क्रमसे बहुत बड़ा रूप बनाते जाते थे, यह बात धीरे धीरे प्रकट हो रही थी। वह छेद राजपूतोंमें परस्पर एकताका न होना था। पहले ही कहा जा चुका है कि राणा अमरसिंह ने अम्बरनरेशके पुत्र जयसिंहके साथ अपनी कन्याका विवाह करनेसे पहले अम्बर नरेशसे प्रतिज्ञा करा ली थी कि यदि इस सम्बन्धसे पुत्र पैदा होगा तो वह ज्येष्ठ पुत्रकी तरह बापकी गद्दीका अधिकारी होगा। इस विवाहका यह फल हुआ कि मधुसिंह नामक बालक पैदा हुआ। नादिरशाहकी चढ़ाईके दो वर्ष बाद महाराज सवाई जयसिंह स्वर्गवासी हुए। उनके स्वर्गवासके बाद उनके ज्येष्ठ पुत्र ईश्वरीसिंह अम्बरकी गद्दीपर बैठे। परन्तु एक बलवान् सम्प्रदाय अम्बरनरेशकी पूर्व प्रतिज्ञाके अनुसार राणाजीके भाञ्जे मधुसिंहको गद्दीपर बिठानेके लिये बहुत उत्सुक दिखाई दिया। नहीं कहा जा सकता कि उत्तराधिकारका सदाका नियम भङ्ग कर छोटे मधुसिंहको गद्दी देनेकी इच्छा स्वर्गवासी सवाई जयसिंहजीकी थी या नहीं; परन्तु यह तो सहज ही समझा जा सकता है कि मधुसिंहका लालन पालन बिलकुल इस मतलबके लिये नहीं किया गया था; क्योंकि यदि ऐसा होता तो वे राणा संग्रामका दिया हुआ रामपुर राज्य नियमित सामन्तप्रथाके अनुसार भूमिवृत्तिकी रीति पर भोग न करते। परन्तु अनुमति पत्रमें बिलकुल इसके विपरीत बात थी;—उसमें उनको "चिम्मा" अर्थात् युवराजका हक दिया गया था। खैर, इन बातोंके कारण किसी प्रकारका झगड़ा या गड़बड़ पैदा होने से पहले ईश्वरीसिंहने पांच वर्षों तक राज्य किया। इस समयके बीचमें दुर्रानियों

पास आ जाते तो बहुत अच्छा होता; क्योंकि फिर हमलोग रुपयेका बन्दोबस्त कर सकते। छिपा रखनेमें आप विख्यात हैं; पर इस पुत्रने (क) आपसे कभी कुछ नहीं छिपाया; इसलिये आपका धन सञ्चय करना वृथा है और इससे सन्देह होता है। विश्वस्त आदमीके द्वारा आप कुछ जवाहरात और तमस्सुक पावेंगे; मेरे पास उनको ले आइयेगा। गड़बड़ियोंके दूर करनेका इसके सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं है। आप ज्ञानी हैं; मैं आपको अधिक क्या लिखूं? भविष्यका जरा विचार कीजियेगा। अब मैं आपको दूसरा पत्र न लिखूंगा।"

(क) राणाजी बिहारीदासको सदैव "पिता" कहते थे।

का * प्रथम आक्रमण रोकनेके लिये वे अपनी सेना लेकर सतलज नदीके किनारे तक गये थे । इस विषयमें विशेष बातें आगे चलकर अम्बरके इतिहासमें मिलेंगी ।

अपनी भाञ्जे मधुसिंहको लेकर उसके स्वार्थको रक्षाके लिये राणाजीने दलबल के सहित ईश्वरीसिंहका सामना किया । दोनों दलोंमें लड़ाई आरम्भ हुई । सीसोदीय वीर लोग ईश्वरीसिंहको पराजित करने गये थे, पर स्वयं हार गये । इसका कारण यह था कि इस लड़ाईमें उनके हृदयमें सच्चा उत्साह बिलकुल उत्पन्न नहीं हुआ । कदाचित् अन्याय पक्षको सहायता करना उनकी समझमें नीतिविरुद्ध जान पड़ा इसीसे वे उत्तेजित नहीं हुए । राणाजीके सैनिक युद्धमें हारकर इधर उधर भागे । राणाजीको अपनी सेनाके हारनेका बहुत दुःख हुआ; पर जब उन्होंने देखा कि सैनिकोंकी उत्साहहीनताके कारण लड़ाई बिगड़ी तब क्रोध ने उनको आ घेरा । क्रोधके आवेगमें गिह्लोट कुलकी तेज तलवार एक साधारण वेश्याके हाथमें देकर जोश और व्यङ्गके साथ उन्होंने कहा "ऐसी गिरी हुई दशा में यह तलवार स्त्रीके ही व्यवहारके योग्य है ।" वह मेवाड़का गिरता हुआ समय था; ऐसे समयके लिये यह व्यङ्गोक्ति ठीक ही थी ।

कोटा और बूंदीके हाड़ोंने पिछली लड़ाईमें राणाजीकी सहायता की थी, इसलिये उनको दण्ड देनेके विचारसे ईश्वरीसिंहने आपाजी सिन्धियाकी सहायता

* "कन्दहार जय करनेके समय नादिरशाहने पराजित खिलजियोंके साथ अहमदखां अब्दाली नामक एक अफगानीको कैद किया था । अफगानिस्तानमें सदूजी नामक एक कौम है; वहांवाले इस कौमके लोगोंको बहुत पवित्र मानते हैं । अहमदखां अब्दाली इसी कौममें पैदा हुआ था । वह बड़ा तेजस्वी, वीर और पराक्रमी था । नादिरने कैद करनेके बाद उसे छोड़ दिया, बल्कि उसे एक जमींदारी दी । जब नादिरशाह अपनी जातिके लोगोंके द्वारा गुप्त रीतिसे मारा गया तब अहमदखांने उसके राज्य पर अधिकार कर लिया और सन् १७४७ ई० के अक्तूबर महीनेमें वह कन्दहारका स्वाधीन अधिकारी माना जाने लगा । इसके थोड़े दिन बाद उसने भारतवर्ष पर चढ़ाई की । ईश्वरीसिंह उसीकी चढ़ाई रोकनेके लिये सतलजके किनारे गये थे । बादको अहमदखांने अपने गोत्रका नाम "अब्दाली" से "दुर्रानी" कर दिया था । देखिये—"नादिरनामा" ।

लेकर उनपर आक्रमण किया। हाड़ानरेश बड़ी वीरतासे लड़े और इस युद्धमें आपाजी सिन्धियाका एक हाथ कट गया। तौभी, इस युद्धका जो फल हुआ उससे दोनों पक्षोंके लोगोंको कुछ कुछ हानि उठानी पड़ी और कोटा तथा बूंदी दोनों नरेशोंको सिन्धियाको नियमित कर देनेको लाचार होना पड़ा। दुःखित राणा जगत्सिंहने अपनी हारका बदला लेनेके लिये मल्हारराव होलकरसे सहायता मांगी और इस विषयमें बातचीत करते समय उन्होंने प्रतिज्ञा की कि यदि होलकर ईश्वरीसिंहको गद्दीसे उतार देंगे तो मैं उनको चौंसठ लाख रुपये दूंगा। जिस दिन जगत्सिंहने इस प्रतिज्ञापत्र पर दस्तखत किया उस दिनसे राजस्थानके ऊपर मरहठोंका अधिकार दृढ़ होने लगा। शीघ्रही यह बात ईश्वरीसिंहके कानों तक पहुंच गई। राजगद्दीसे अपना उतारा जाना और अपमान निश्चित और अनिवार्य जानकर अभागे ईश्वरीसिंहने विष खाकर अपने प्राण त्याग दिये। तब मधुसिंह अम्बरकी गद्दी पर बैठे; होलकरने प्रतिज्ञाके अनुसार घूसके ६४ लाख रुपये लिये और मरहठोंको दृढ़ताके साथ राजस्थानमें अपनी विजयपताका गाड़नेका अवसर मिला। राजपूत जातिके अधःपतनका मुख्य यही कारण है। इसीसे सीसोदीय, राठौड़ और कछवाहे अपने पूर्वजोंका गौरव खोकर अत्यन्त दीन दशाको पहुंचे। इस समयसे उनमें जो कठोर भीतरी झगड़ा घुसा उसने उनकी दुर्दशा कर डाली। आखिर मरहठोंने उनका सर्वस्व लेकर राजस्थानको श्मशानके समान बना डाला। इस भीतरी झगड़े और कठोर मरहठाउपद्रवके कारण राजपूत बहुत दिनोंतक कष्ट भोगते रहे। अन्तमें सन् १८१८ ई० में सन्धि करके कारुणिक बृटिश गवर्नमेण्टने सङ्कटसे उनका उद्धार किया।

अठारह वर्षोंतक अयोग्यतासे राज्यका शासन करके संवत् १८०८ वैक्रमीय (सन् १७५२ ई०) में राणा जगत्सिंह परलोकवासी हुए। ये वीरवर बप्पारावलके पवित्र सिंहासन और सीसोदीय कुलके बिलकुल अयोग्य थे। हाथियोंकी लड़ाईमें ये आनन्द मानते और वृथा समय गँवाते † थे। मरहठोंका बढ़ता हुआ जोर दबानेका प्रयत्न करनेकी अपेक्षा इस खेलको अधिक पसन्द करते थे। परन्तु एक

† राणा जगत्सिंहने मन्त्री बिहारीदासको जो पत्र लिखे थे उनमेंसे प्रथम पत्र देखिये।

बातमें इनके गुणका विशेष परिचय मिलता है; अर्थात् अपने पूर्वपुरुषोंकी तरह शिल्पकी उन्नतिके लिये ये भी अपनी प्रजाको उत्साहित करते थे। उदयपुरके राजमहलको इन्होंने बहुत बढ़ाया था और पिशोला झीलके टापुओंके सँवारनेमें २० लाख रुपये खर्च कर डाले थे। मैदानोंमें जो विनोदगृह देख पड़ते हैं वे सब इन्होंके बनवाये हुए हैं। उनके सिवा, जो उत्सव लोगोंको आलसी और विलासी बना देते हैं और अब जिनके करनेका उदयपुरवालोंको अभ्यास पड़ गया है, उनको इन्हीं राणा द्वितीय जगत्सिंहने पहले पहल प्रचलित किया था।

पन्द्रहवां अध्याय।

राणा द्वितीय प्रतापसिंह;—राणा द्वितीय राजसिंह;—राणा अरिसिंह;—होलकरका मेवाड़पर आक्रमण करना और कर लेना;—राणाको गद्दीसे उतारनेके लिये विद्रोह;—विद्रोही सरदारोंका एक झूठा दावेदार राजा चुनना;—कोटाके जालिमसिंह;—सिन्धिया और झूठे राजाके बीच एकताबन्धन;—उनकी इकट्ठी और संयुक्त सेना पर राणाजीका आक्रमण करना;—राणाजीका हारना;—सिन्धियाका मेवाड़पर आक्रमण और उदयपुरका घेरा करना; राणाजीका अमरचन्दको मन्त्री बनाना;—अमरचन्दकी सुयोग्यता;—सिन्धियाके साथ सन्धि;—सिन्धियाका वापस जाना;—मेवाड़का राज्यक्षय;—विद्रोही सरदारोंका पुनः राणाजीकी अधीनता स्वीकार करना;—गोदार राज्य हाथोंसे निकल जाना;—राणाजीका छिपी रीतिसे मारा जाना;—राणा हम्मीरका सिंहासनारोहण;—राणाजीकी माता और अमरचन्दमें झगड़ा;—अमरचन्दका महत् चरित्र, मृत्यु और चरित्रवर्णन;—मेवाड़ राज्यका क्षय होना।

दिन जाता है—दिन आता है; पर जो दिन एक बार चला जाता है वह तो फिर लौटकर नहीं आता? शरद् ऋतुके जिस चन्द्रमाकी मधुरता मनोहारिता एकबार देखकर बड़ा आनन्द मिला था, वह चन्द्रमा अनेक बार दिखाई दिया, अनेक बार उसकी विमल चांदनी चारों ओर छिटकी हुई देख पड़ी, पर क्या वह पहला आनन्द फिर मिला? वह आनन्द तो उस शारदीय चन्द्रके साथ ही चला

गया; फिर क्योंकर आता? उसके फिर न आनेका कारण इसके सिवा और कुछ नहीं है कि वह दिन फिर लौटकर नहीं आया और नहीं कहा जा सकता कि पुनः आवेगा या नहीं। इसीसे कहा कि दिन जाता है—दिन आता है; पर जो दिन एकबार चला जाता है वह फिर लौटकर नहीं आता। परन्तु जीवन रहते जीवित रखनेवाली प्यारी आशाको कौन त्याग सकता है? मनुष्य आशाका दास होता है; आशा ही इस क्षणभङ्गुर जीवनपुष्पकी कली है। जिस तरह कलीको तोड़िये तो भविष्यमें पैदा होनेवाला फूल नष्ट हो जाता है वैसे ही आशा टूटनेसे मनुष्यका जीवन पुष्प भी सदाके लिये नष्ट हो जाता है। आशा मनुष्यको भिन्न भिन्न ओर चलानेवाली कल है। परन्तु किसी बातका अभाव या कमी होनेसे आशा पैदा होती है। जिनको किसी बातका अभाव नहीं या किसी चीजकी कमी नहीं उनको आशा भी नहीं होती और उनका जीवन उत्साहहीन होता है। अवश्यही अभावसे आशाकी उत्पत्ति होती है, परन्तु आशासे ही अभावका सच्चा ज्ञान होता है—और अभावका ज्ञान होनेपर चेष्टा, चेष्टाके बाद उद्योग और उद्योग करनेसे कार्य्य सिद्ध होता है। जिस व्यक्तिमें आशा नहीं, जो अपना अभाव नहीं समझता, समझकर भी जो अभावके पूर्ण करनेकी चेष्टा नहीं करता, उसका कोई मतलब कभी सिद्ध नहीं हो सकता; उसका जीवन व्यर्थ है। युरोपका इटली देश एक समय गिरा था, उसके संसारविजयी पुत्रोंके पांवोंमें पराधीनताकी कठोर बेड़ियां पड़ गई थीं, पर वही इटलीदेश फिर उठा;—उठा केवल अपने आशामें पड़े हुए पुत्रों के अनन्त उद्योगके प्रभावसे। उन्होंने अपना अभाव जाना था;—जाना था कि अब वे पहलेकेसे इटैलियन नहीं थे;—जिन इटलीवासियोंके प्रचण्ड प्रभावके आगे एक समय आधा संसार कांपता था वे अब वेही इटालीय नहीं थे; इस समय वे स्वाधीनता-रहित, शत्रुपद दलित, बैरीनिपीड़ित थे—प्रतापी आष्ट्रियाके दास थे! तब उन्होंने समझा कि उनकी स्वाधीनताका अभाव है; समझकर इस अभावकी पूर्त्ति करनेकी चेष्टा आरम्भ की; उद्योग और उद्यम करते करते अन्तमें उनकी चेष्टा सफल हुई; आष्ट्रियाकी आधीनतासे निकलकर उन्होंने अपनी जन्मभूमिके मस्तकपर फिर स्वाधीनता-रत्नका मुकुट पिन्हाया। इटलीदेश स्वाधीन होनेको तो हो गया परन्तु उसकी पहली स्वाधीनता और अबकी स्वाधीनतामें बड़ा अन्तर था। पहली स्वा-

धीनताका प्रताप आधे संसारमें व्याप्त था, पर इस स्वाधीनताकी धूम उसकी चारदीवारोके अन्दर ही अन्दर तक थी। इटलीके भाग्याकाशमें फिर स्वाधीनता का सूर्य दिखाई दिया, परन्तु यह सूर्य पहले जैसा नहीं था। इसीसे दो बार कहा और अब फिर कहते हैं कि—दिन जाता है दिन आता है, पर जो दिन एकबार चला जाता है वह फिर लौटकर नहीं आता। यह प्राकृतिक नियम है। इसी नियमके अनुसार संसार भरकी माता संसार भरकी रानी भारतभूमि गिरी और हीन हीन दशाको पहुंची! राम गये, लक्ष्मण गये, जामदग्न्य गये और फिर उसी भूमिमें भीष्म, द्रोण, भीमार्जुन, कर्ण, कृष्ण, जरासन्ध आदि महावीर पुरुष उत्पन्न हुए। ये भी चले गये। यद्यपि बहुत दिन बाद पुरु, चन्द्रगुप्त, अशोक, पृथ्वीराज समर, संग्राम और प्रतापसिंहने क्रम क्रमसे उत्पन्न होकर बहुत दिनोंके निर्जीव भारतको फिर सजीव किया; यद्यपि फिर भारतका जयगान होने लगा और यद्यपि फिर भारतभूमिमें एकता आत्मोत्सर्ग स्वदेशप्रेम आदिकी धूम सुन पड़ने लगी; पर जो दिन बीत गये थे वे फिर न आये!—और—कालचक्रमें पड़कर क्रम क्रमसे इनका समय भी बीत गया! भारत देश फिर निर्जीव हो गया। क्या किया जाय, संसारका ऐसा नियम ही है और इसी नियमके अनुसार पुरुषश्रेष्ठ प्रथम प्रतापसिंहके सिंहासन पर राणा द्वितीय प्रतापसिंह बैठे!—अहो! देखिये, संसारकी सभी बातें अस्थिर हैं!

राणा द्वितीय प्रतापसिंह सन् १७५२ ई० में मेवाड़की गद्दी पर बैठे। यह नाम सुननेसे प्रातःस्मरणीय महात्मा प्रथम प्रतापसिंह याद आ जाते हैं; परन्तु साथ ही इतिहास बड़े गम्भीर स्वरमें मानो बोल उठता है—"ये प्रतापसिंह वीरश्रेष्ठ स्वदेशप्रेमिक प्रथम प्रतापसिंह नहीं हैं।" इनके राजत्वकालकी कोई घटना वर्णनके योग्य नहीं है; केवल इतनीही बात कहनेकी है कि इन्होंने तीन वर्षों तक राज्य किया और इन तीन वर्षोंमें मेवाड़में मरहठे उपद्रव मचाते रहे। इन तीन वर्षोंमें तीन बार मरहठोंने * मेवाड़ पर आक्रमण किया और सीसोदियोंसे रुपये लिये। प्रतापने अम्बरनरेश जयसिंहकी कन्यासे विवाह किया था। उस

* जिन तीन अधिनायकोंकी अधीनतामें उक्त तीनों बार मरहठे वीरोंने मेवाड़ पर चढ़ाइयां कीं उनके नाम ये हैं,—सत्यजी, जनकजी और रघुनाथराव।

कन्याके गर्भसे उनके राजसिंह नामक एक पुत्र हुआ । यही राजसिंह उनके बाद मेवाड़की गद्दी पर बैठा ।

जिन वीरवर राजसिंहने क्षत्रियोंकी वीरतारूपी आगको बुझनेसे बचा लिया था, जिनके वीरत्वसे एक समय औरङ्गजेबका सिंहासन तक डगमगा उठा था, आज उन्हींका नाम रखकर एक और बेकाम राजा मेवाड़की गद्दी पर बैठा । राणा द्वितीय राजसिंह इस पवित्र नामके योग्य नहीं थे । उन्होंने केवल ७ वर्ष राज्य किया । उनके शासनसमयमें मरहठोंने ७ बार मेवाड़ पर आक्रमण किये । मरहठोंकी कठोरतासे मेवाड़की अवस्था बहुत खराब हो गई; मेवाड़नरेश इतने गरीब हो गये कि उनको राठौड़-राजकुमारीके साथ अपना विवाह करनेके लिये अपने कार-विभागके मन्त्रीसे रुपये मांगने पड़े । इन राणाजी (राणा द्वितीय राजसिंह) की मृत्युके बाद मेवाड़की गद्दीपर बैठनेके पुराने नियममें गड़बड़ पड़ी; अर्थात् उनके बाद उनके चचा अरिसिंह गद्दी पर बैठे ।

अरिसिंह संवत् १८१८ (सन् १७६२ ई०) में अपने भतीजेकी गद्दीपर बैठे । वे बड़े क्रोधी थे । एक तो जगत्सिंहकी चपलता और द्वितीय प्रतापसिंह तथा राजसिंहकी अयोग्यताके कारण मेवाड़राज्य बहुत दीन हीन अवस्थाको पहुँच हो चुका था, तिसपर वर्त्तमान राणाजीके तेज मिजाज और उस समयकी घटनाओंके कारण और भी अनर्थ हुआ । इस अनर्थसे राज्यमें जो गड़बड़ फैली उसने बड़ी ही हानि की । इससे पहले मरहठोंके अत्याचारके कारण बहुत हानि हो चुकी थी, पर उससे मेवाड़की एक भी इञ्च भूमि राज्यसे अलग होने नहीं पाई थी; पाञ्चोली मन्त्रियोंकी बुद्धिमानी और सतारानरेशकी दृढ़ राजभक्तिसे अबतक मेवाड़ बचता आया था; परन्तु जब राज्यमें भीतरी गड़बड़ पैदा हुई और प्रजाओंने एकता छोड़ दी, जब मरहठे भिन्न भिन्न दलोंमें बँटकर उस आपसमें झगड़नेवाली प्रजाकी सहायता करने लगे और सबकी आंखें बचाकर मौके मौके से अपना पेट भरने लगे, तब राज्यके अधःपतनका समय धीरे धीरे निकट आने लगा । प्रतापकी गद्दीसे उतारकर उनके चचा नाथजीको बिठानेके लिये मेवाड़के सरदारोंने जो कई बार उपद्रव मचाये थे उस उपद्रवके रोकनेको मल्हारराव होलकर मध्यस्थ बनाये गये थे । महाराष्ट्रीय नीतिके अनुसार चतुर होलकर इससे

पहले मेवाड़का बहुतसा अंश अपने अधिकारमें कर चुके थे; अब सुयोग पाकर वे और भी स्थान अपने अधीन करनेका यत्न करने लगे ।

खूनका सम्बन्ध और कृतज्ञताका बन्धन, ये दो बन्धन निस्सन्देह बड़े मजबूत होते हैं; पर जब राजनीतिक आवश्यकता होती है तब ये तुरन्त तोड़ दिये जा सकते हैं । यह भी सच है कि सच्ची कृतज्ञता इस संसारमें नहीं है, पर यह कहां लिखा है कि उपकारके बदले अपकार कर डाले ? जिन मधुसिंहको अम्बरकी गद्दीपर बिठानेके लिये राणाजीने बहुत धन खर्च किया था—अपने लाभको परवा नहीं की थी, यहांतक कि जिसकी सहायताके बिना वे "राजा" न कहे जा सकते, उन्हीं मधुसिंहने अपने उपकारी मामाके सब उपकारोंको भूलकर यह कठोरता की कि मेवाड़राज्यका श्रेष्ठ अंश रामपुर राज्य मल्हारराव होलकरको दे दिया † । बाजीरावको मेवाड़से जो रुपया लेना था उसकी वसूलीका काम उन्होंने होलकरको सौंपा था; परन्तु जिन नियमों पर राणाजीने यह नियत रुपया या कर देना स्वीकार किया था मरहठोंने उन नियमोंको तोड़ दिया; * अतएव राणाजीने समझा कि इस करसे अब मुझे छुटकारा मिल गया । इससे बहुत रुपये बाकी पड़ गये । इस बकाये रुपयेकी वसूली तथा चम्बल नदके ऊपरी हिस्सेके कुछ जिलोंका कर लेनेके बहानेसे मल्हाररावने मेवाड़ पर चढ़ाई कर दी । इससे पहले वे इस विषयमें राणाजीको कई बार पत्र लिख लिखकर धमका चुके थे, परन्तु इस समय मेवाड़में भीतरी झगड़ा उठा हुआ देख तथा सुयोग पाकर उन्होंने मेवाड़ प्रान्तमें पहुंच राजधानीके घेरनेका उद्योग किया । तब राणाजीने बचावका कोई उपाय न देख उनको ५१ लाख § रुपये दिये । एक तो पहले ही

† संवत् १८०८ (सन् १७५२ ई०) में यह कार्य हुआ । इसके बाद रामपुरका कोई कोई अंश मेवाड़के अन्तर्गत था । रामपुरके विषयमें बहुतसी बातें पहले लिखी जा चुकी हैं ।

* बाजीरावसे जो सन्धि हुई थी उसके अनुसार स्थिर हुआ था कि अब मरहठे मेवाड़ पर आक्रमण नहीं करेंगे । परन्तु जब मरहठोंने आक्रमण करना नहीं छोड़ा तब राणाजीने समझा कि अब यह सन्धिपत्र व्यर्थ है ।

§ होलकर अन्तला तक बढ़ गये थे । वहां कोरावरके अर्जुनसिंह और राणाजीके धाय-भाइयोंने उनसे मिलकर ५१ लाख रुपये देना स्वीकार किया ।

से रुपयेकी कमी थी, तिसपर इतना अधिक रुपया देनेसे मेवाड़की जो दीन दशा हुई उसका अनुमान पाठकगण स्वयं कर सकते हैं। उस वर्ष ॥ फिर मेवाड़में बड़ा अकाल पड़ा। इस भयानक अन्नकष्टके समय खानेकी चीजें इतनी महँगी हो गईं कि इमली और आटा एक ही मूल्य पर अर्थात् रुपयेकी तीन पाव बिकने लगी। इस भीषण अकालके मिटनेके चार वर्ष बाद मेवाड़में एक बहुत बड़ा भीतरी झगड़ा खड़ा हुआ। उससे वहांकी प्रजाएँ इतनी कमजोर हो गईं कि मरहठोंसे अपने धन मालको रक्षा बड़ी मुश्किलसे कर सकती थीं। बहुत दिनों तक लूटपाट मचती रही। आखिर सन् १८१७ ई०में कृपामयी ब्रिटिश गवर्नमेण्ट ने उनके जलते हुए हृदयोंपर शान्तिका जल छिड़क कर उनको अपने राजछत्रकी ठण्डी छायामें आश्रय दिया।

सरदारोंके विद्रोह करनेका असली कारण आजतक कोई नहीं जान सका और कदाचित् भविष्यमें भी कोई न जान सकेगा; क्योंकि इस विषयमें भिन्न भिन्न रायें सुनी जाती हैं। तेजस्वी राजपूत मरहठोंका उपद्रव रोकनेके बिलकुल अयोग्य जानकर अपने राजाको गद्दीसे उतारनेकी चेष्टा करने लगे। किसी किसीका अनुमान है कि मेवाड़के झगड़ाज सामन्तोंने आपसकी डाह और स्वार्थपरताके कारण यह विद्रोह खड़ा किया। कहा जाता है कि राणा अरिसिंहने अपने भतीजे राजसिंहको अन्याय उपायसे मारकर राजसिंहासन प्राप्त किया था। यद्यपि प्रचलित कहानियोंसे मालूम होता है कि राणाजीके चरित्रमें बहुतसे दोष थे, परन्तु कोई प्रमाण नहीं मिलता जिससे ऊपर लिखा सन्देह पक्का हो। मेवाड़के उत्तराधिकारके पुराने नियममें गड़बड़ पड़नेके कारण वहां बहुत तरहके अनर्थ और अमङ्गल हुए। इसके सिवा, अरिसिंहको राजगद्दीपर बैठनेका कोई हक और अधिकार नहीं था। बहुत दिनोंतक वे सीसोदीय कुलके सोलह सरदारोंके नीचे मेवाड़दरबारमें स्थान पाते आये थे और सीसोदीय कुलके राजपुत्र कहे जाते तथा ३० हजार रुपये वार्षिक आमदनीकी जागीर भोगते हुए दूसरे दर्जेके सरदारोंमें गिने जाते थे। जिन सरदारोंका अबतक उनसे अधिक सम्मान था वे क्या उनके आगे सिर झुका सकते थे? उनको क्या अपना राजा कहकर सम्मानित कर

॥ संवत् १८२० वैक्रमीय (सन् १७६४ ई०)।

सकते थे ? कदापि नहीं । जब वे अपना अधिकार जताने लगे तब बहुतसे सरदार उनसे घृणा करने लगे । वे सरदार उनके साथ बहुत दिनोंतक रह चुके थे; बहुत दिनोंतक एकसाथ रहनेके कारण वे उनके चालचलनके विषयमें बारीकसे बारीक बात भी जानते थे;—उनको खूब मालूम था कि अरिसिंहका मिजाज बहुत तेज है— विशेषकर उनमें राजगुण कोई नहीं है । उनके चालचलनका हाल पूरी तरह जाननेके कारण वे उनसे घृणा करते और जरा भी उनका आदर मान न करते । उनके कड़े मिजाजके कारण मेवाड़के प्रधान सरदार सादरीनरेश अलग हो गये * । जिन अनुभवी झालासरदारने हल्दीघाटकी भीषण लड़ाईमें प्रतापसिंहके प्राण बचाकर सीसोदीय कुलको सदाके लिये अपना कृतज्ञ बना लिया था आज उन्होंने अरिसिंहके कठोर आचरणोंसे नाराज होकर सीसोदियोंसे अपने को अलग कर लिया । इधर देवगढ़नरेश यशोवन्तसिंहको प्रति अरिसिंहने श्लेष (दुमानी) बात कही थी, अतएव वे भी नाराज हो गये । यशोवन्तसिंह तेजस्वी चण्डके वंशधर थे; अतएव उस व्यङ्ग बातका बदला लेनेमें उन्होंने कुछ भी सङ्कोच नहीं किया ।

---

* उक्त झाला सरदारने राणाजीके मन्त्रीके नाम एक पत्र लिखा था । टाड साहबने वह पत्र प्रकाशित किया था । हम उसका अनुवाद नीचे प्रकट करते हैं।

यशोवन्तराव पाञ्चोलीके प्रति राजरण रघुदेवकी ओरसे ।

"आपका पत्र मिला । बचपनसे आप मेरे मित्र रहे हैं और बराबर मेरा विश्वास करते आये हैं; क्योंकि मैं राणाकुलके भक्तोंमेंसे हूं । मैं आपसे कोई बात नहीं छिपाता, इसीसे आज लिखता हूं कि अब काम करनेमें मेरा जी नहीं लगता । आगामी आषाढ़ महीनेमें गयाजी जानेका मेरा विचार है । राणाजीसे जब मैंने यह बात कही तो उन्होंने श्लेषमें यह उत्तर दिया "तुम द्वारका (क) जा सकते हो ।" यदि मैं रहूं तो राणाजी मेरी जागीर दे देंगे जैसा कि जैतजीके समय में हुआ था । मेरे पूर्वजोंने राणाकुलकी पूरी सेवा की; मैं भी १४ वर्षकी उमरसे ऐसा ही करता आता हूं । इस समय मैं शक्तिहीन हूं; यदि दरबार मुझपर कुछ कृपा करना चाहे तो उसके लिये यही समय है ।"

(क) द्वारका = वह तीर्थभूमि जो धर्मभीरु और युद्धके अयोग्य लोगोंके लिये है ।

अपमानित और नाराज सरदारोंने अरिसिंहको गद्दीसे उतारनेके लिये एक चाल चली और रत्नसिंह नामक एक व्यक्तिके विषयमें प्रकट किया कि राणा राजसिंहके असली उत्तराधिकारी येही हैं। उन्होंने यह खबर प्रचारित की कि रत्नसिंह राजसिंहके पुत्र हैं और गोगुण्डा सरदारकी कन्याके गर्भसे उत्पन्न हुए हैं। यह बात सच थी या झूठ इसका निर्णय अभीतक नहीं हुआ और कदाचित् हो भी नहीं सकेगा। खैर, इन्हीं रत्नसिंहको अपने झगड़ेकी चीज बनाकर असन्तुष्ट और क्रुद्ध सरदारोंने विद्रोह मचा दिया।

देखते देखते मेवाड़के सोलह सरदारोंमेंसे अधिकांश रत्नसिंहके दलमें जा मिले; केवल पांच † राणाजीके पक्षमें रहे। इनमें सबसे पहले सालुम्ब्रासरदार नकली राणाके दलमें मिले, पर बाद शीघ्रही उसका पक्ष छोड़कर फिर राणाजी की ओर आ गये। जिस सच्ची राजभक्तिके उत्साहमें वीरवर चण्डके वंशधर सीसोदीय कुलके लिये अपने प्राणोंको भी न्यवछावर कर देनेमें पीछे नहीं हटते थे आज उस राजभक्तिके अनुरोधसे सालुम्ब्रा सरदारने राणाजीका साथ नहीं दिया, किन्तु एक दूसरे कारणसे। बात यह थी कि उनको बड़ा अधिकारी होना पसन्द था; उन्होंने सोचा था कि यदि विद्रोहियोंका साथ दूंगा तो मेरा विशेष जोर और अधिकार रहेगा। परन्तु जब प्रतिद्वन्द्वी शक्तावतोंके आगे ‡ उनकी चाल चल न सकी तब उन्होंने उनका पक्ष छोड़कर राणाजीका पक्ष लिया।

दीप्रा गोत्रका वसन्तपाल नामक एक व्यक्ति "नकली राजा" का प्रधान मंत्री बना। खृष्टीय बारहवीं शताब्दीमें इस व्यक्तिके पूर्वज देहली नगरीसे समरकेसरी महाराज समरसिंहके साथ मेवाड़में आये थे। उस समयसे पहले वे भारतके अन्तिम हिन्दू चक्रवर्त्ती नरेश महाराज पृथ्वीराजके दरबारमें एक ऊँचे पद पर नियुक्त थे। अस्तु, सरदारोंकी सहायतासे "फितूरी" ने § कमलमीर पर अधिकार कर

† सालुम्ब्रा, विजोली, आमैत, गानोड़ और बेदनोरके सरदार।

‡ भिण्डोर (शक्तावत), देवगढ़, सादरी, गोगुण्डा, देलवाड़ा, बेदला, कोटारिओ और कानोड़के सरदार "नकली राणा" का साथ देनेवाले सरदारोंमें विशेष पराक्रमी थे।

§ उर्दू "फितूरी" और अंगरेजी "प्रिटेण्डर" (Pretender) शब्दके बदलेमें हमने "नकली नरेश" का व्यवहार किया है।

लिया और वहां उन्हींके द्वारा राजा बनाया जाकर वह "मेवाड़के राणा" के नाम से राज्यके कागजों पर हस्ताक्षर करने लगा। राजनीतिके तत्व पर ध्यान न देकर नकली राणाके सरदार स्वार्थसाधनके लिये अन्तमें जिस अनुचित ढङ्ग पर चले उससे मेवाड़का शीघ्र अधःपतन हुआ। आखिर लाचार होकर उनको सिन्धिया से सहायता मांगनी पड़ी और उनको इस शर्तपर एक करोड़ २५ लाख रुपये देनेकी प्रतिज्ञा करनी पड़ी कि वे अरिसिंहको गद्दीसे उतार दें।

मेवाड़के इस घोर भीतरी झगड़ेके समय राजस्थानमें एक बड़ा वीर पुरुष प्रकट हुआ जिसका नाम जालिमसिंह था। कोटानिवासी जालिमसिंहने राजस्थानमें—विशेषकर मेवाड़में—जो जो अद्भुत काम किये उन कामोंकी बातें जानकर कोई मनुष्य इस राजपूत वीरकी वीरता, महत्ता, तेजस्विता और राजनीतिज्ञता-की हृदयसे प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता। मेवाड़हीमें उसकी राजनीति-निपुणताका प्रथम प्रकाश हुआ। यद्यपि इस जगह उसकी जीवनीकी समालोचना करना प्रसङ्गके बाहर होगा, तौभी मेवाड़में जो जो कार्य किये वे कार्य उसकी जीवनीसे इतना अधिक सम्बन्ध रखते हैं कि उन कार्यों का वर्णन करनेसे पहले उसके विषयकी दो चार बातें लिख देना बहुत ही आवश्यक जान पड़ता है। मधुसिंहको अम्बरकी गद्दी पर बिठानेके लिये ईश्वरीसिंह और जगत्सिंहमें जो झगड़ा मचा था उसी झगड़ेने जालिमसिंहके भविष्य महान् चरित्रका द्वार खोल दिया। उस समय इनके पिता कोटाके शासनकर्त्ता थे। बदला लेनेके लिये जब ईश्वरीसिंहने सिन्धियाके साथ मिलकर कोटा पर आक्रमण किया था तब जालिम-सिंह वहीं थे। उसी समय मरहठे सेनापतियोंसे पहले पहल उनसे बातचीत हुई थी। इस बातचीतसे वे मरहठोंकी नीति और कौशलको अच्छी तरह समझ सके थे और उन्हींकी नीतिके अनुसार अपने जीवनके पचास वर्ष बिताये थे। अपने राजाकी अकृपासे उनको कोटाराज्य छोड़ना पड़ा; तब वे राणाजीके पास आये। उनकी बुद्धिमानी और कार्यकुशलता देखकर राणाजीने उनको अपने सरदारोंमें स्थान दिया और "राजरण" की उपाधिके साथ उनको छत्रखेरीकी जागीर दी। जालिमसिंह हीकी सलाहके अनुसार महाराष्ट्रसे-नापति राघव पेशावाला और दौला मियां अपनी अपनी सेना लेकर मेवाड़में आये। इधर राणाजीने प्राचीन

पाश्वोलियोंसे मन्त्रीका पद छुड़ाकर यह पद उग्रजी मेहता नामक एक व्यक्तिको दिया। उस समय (संवत् १८२४ सन् १७६८ ई० में) माधाजी सिन्धिया उज्जैन में थे;—उनसे सहायता मिलनेकी आशा करके मेवाड़के प्रतिद्वन्द्वी सरदार उनके पास गये। सबसे पहले रत्नसिंह गये। आगे ही पहुंच और सिन्धियासे बातचीत करके उन्होंने चिप्रा नदीके किनारे खेमे खड़े किये; अतएव राणा अरिसिंहके सब ये बन्दोबस्त व्यर्थ हो गया।

जब राणा अरिसिंहको माधाजी सिन्धियाकी सहायता नहीं मिली तब वे अपनी ही सेना लेकर नकली राणाके मुकाबलेके लिये चले। सालुम्ब्रासरदार, शाहपुर और बुनेराके राजे तथा जालिमसिंह और मरहठोंके सैनिक उनके साथ हुए। इन सबने मिलकर बड़ी ही वीरतासे माधाजीकी सेना पर आक्रमण किया। राणाजीकी सेना मारती काटती हुई लगातार आगे बढ़ती गई। माधाजी और नकली नरेश दोनों उज्जैन नगरकी ओर भागे; परन्तु लड़ाईका नवीन प्रबन्ध करके अपने अपमान और पराजयका बदला लेनेके लिये वहांसे फिर लौटे। विजयी राजपूत अपनी जीतके आनन्दमें थे; उनको इस बातका बिलकुल ध्यान नहीं था कि माधाजीके सैनिक पुनः आवेंगे;—अतएव वे बड़ी निश्चिन्तताके साथ शत्रुओंके डेरे खेमे लूट रहे थे। एक एक दल एक एक ओर लूट मचा रहा था; इतनेमें माधाजीकी ओरसे लड़ाईके बाजे बजे! राजपूतोंको आश्चर्य हुआ!—राणाजीको मालूम हो गया कि इस बार शत्रु शीघ्र वशमें नहीं होंगे। अभी राणाजीके सैनिक कायदेसे खड़े नहीं होने पाये थे कि माधाजीके लोग उनपर टूट पड़े। सालुम्ब्रा, शाहपुर और बुनेराके नरेश मारे गये और सहकारी दौला मियां, नरवरका गद्दीच्युत राजा और सादरीनरेशके उत्तराधिकारी कल्याणराज बे-तरह घायल हुए। जालिमसिंह भी बहुत घायल हो गये थे, पर उनका घोड़ा मारा गया था अतएव वे मैदानसे जा न सके और पकड़े गये; तौभी शत्रुओंने उनके साथ कैदी जैसा बरताव नहीं किया। त्र्यम्बकजी नामक एक भले महाराष्ट्रने बड़े यत्न और आदरसे उनको रखा। लड़ाईमें हारकर राजपूत लोग उदयपुर चले गये। इधर नकली नरेशके पक्षपातियोंने उस नगर पर आक्रमण किया और रत्नसिंहको वहांकी गद्दी पर बिठानेके लिये सिन्धियाको उत्तेजित करना प्रारम्भ

किया। कुछ दिनोंके बाद विजयी महाराष्ट्र सरदारोंने पहाड़ी रास्तेसे जाकर उदयपुरको घेर लिया। राणाजी घबराये; क्योंकि उस समय उनके पास सहायता नहीं थी। जो थोड़ेसे साहसी वीर उनके तरफदार थे वे सिप्रा (या चिप्रा) के किनारे लड़कर वीरगतिको जा चुके थे। ऐसी अवस्थामें वे क्या करते? किस तरह मराठोंसे अपनी और उदयपुरकी रक्षा करते? उनके पक्षपातियोंमें यदि कोई योग्य योद्धा पुरुष था तो केवल सालुम्ब्राके भीमसिंह थे। राणाजीने इन्हींको नगर की रक्षाका भार सौंपा। जो सालुम्ब्रासरदार उज्जयिनीकी लड़ाईमें वीरगतिको गये थे उनके ये चचा और उत्तराधिकारी थे। सेनापति होकर उन्होंने वीरवर जयमलके वंशधर बेदनोरके राठौड़ अधिकारीके साथ नगर और राजाकी रक्षाका प्रबन्ध किया। परन्तु केवल एक योग्य पुरुषके कठोर उद्योग और लगातार श्रमसे सब प्रकारकी रक्षा हुई। उस योग्य पुरुषका नाम अमरचन्द बरवा था।

अमरचन्द बरवाका जन्म वणिक्-कुलमें हुआ था। इससे पहले वे मेवाड़के मन्त्री रह चुके थे। उनके समान बुद्धिमान् और कार्यदक्ष मन्त्री इस संसारमें बहुत कम हुए होंगे। स्वर्गवासी राणाजीके समयमें मेवाड़में जो अनर्थ हुए थे उनको अमरचन्दके सिवा शायद दूसरा कोई दूर न कर सकता। सचमुच वे मेवाड़के एक स्तम्भके समान थे। अरिसिंहके समयमें जब मेवाड़में घोर भीतरी झगड़ा उठा तब वे मन्त्रीके पदसे अलग किये गये; पर जिस दिनसे उनको इस पदसे अलग किया गया उस दिनसे राज्यमें अनर्थ और भी बढ़ने लगा और चारों ओरसे नई नई विपत्तियां आ आकर घेरने लगीं। सरदारोंके साथ झगड़ा, मराठोंका उपद्रव और सबसे बढ़कर स्वयं अरिसिंहका खराब मिजाज! ये सब अनर्थ एकसाथ मिलकर और भी बढ़ गये। इन अनर्थोंके बढ़नेके समय अमरचन्द अच्छी तरह समझ गये थे कि अब मुझे यह पद मिलनेकी आशा नहीं है। अमरचन्दका स्वभाव बहुत तेज था और अरिसिंहकी तरह वे भी किसी काममें किसीके रोके नहीं रुकते थे। इस समय जबकी बात लिखी रही है उनको मन्त्रीके पदसे अलग किये गये १० वर्ष बीत चुके थे। इन दस वर्षोंमें मेवाड़राज्यमें बहुत बड़ा परिवर्त्तन हो चुका था। जो सरदार राणा अरिसिंहका पक्ष छोड़कर रत्नसिंहके पक्षमें चले गये थे उनकी जगह वेतन पर सिन्धी सैनिक नियुक्त किये गये। इन्होंने

पहलेके सरदारोंकी जमीन पर अधिकार करके राज्यमें महा असन्तोष फैलाया। इनके कारण मेवाड़की बची खुची वीरता तेजस्विता नष्ट हुई। असन्तोष यहांतक बढ़ा कि जो सरदार रत्नसिंहके पक्षमें नहीं थे वे भी बिलकुल बेलगावकी तरह अपने किलोंके दरवाजे बन्द करके चुपचाप बैठे रहे। इस प्रकार राणाजीकी आशाका बहुत कुछ अंश नष्ट हो गया—उनका पक्ष बहुत कमजोर हो गया। मेवाड़की इस सङ्कटके समयमें परमेश्वरकी कृपासे अमरचन्द फिर बुलाये गये। उदयपुरमें रक्षाके योग्य दीवार या खाईं कुछ नहीं थी। उससे कुछ दक्षिण हटकर एकलिङ्गगढ़ नामक एक ऊँचा पहाड़ी किला था। यही एक तरह पर उदयपुरका प्रधान द्वार था; अतएव राणाजीने विचार किया कि इसको चारदीवारी और धुससे घेर तथा तोपोंसे सज्जित करके उदयपुरकी रक्षाका प्रबन्ध किया जाय। परन्तु यह स्थान बहुत दुर्गम और ऊबड़ खावड़ था इससे राणाजीकी इच्छा पूरी नहीं हो सकी। एक दिन राणाजी इस स्थानको स्वयं देखने गये थे इतनेमें अमरचन्द उनको मिले। अमरचन्दका असन्तोष मिटानेके लिये उन्होंने अपनी भूल स्वीकार की और बड़े अच्छे ढङ्गसे उनसे बातचीत की। फिर कुछ देरके बाद पूछा—"क्या आप बतला सकते हैं कि इस काममें कितना समय और रुपये लगेंगे?" अमरचन्दने गम्भीरताके साथ जवाब दिया—"कुछ अनाज और केवल कई दिन।" इसपर राणाजीने उनसे इस कार्यका भार अपने ऊपर लेनेका अनुरोध किया। अमरचन्दने बिना कुछ सङ्कोच किये कहा—"जबतक इस कार्यका भार मेरे ऊपर रहे तबतक इसके सम्बन्धके सब काम मेरी ही आज्ञासे हों; कोई मेरी आज्ञाके ऊपर अपनी आज्ञा न चलावे। यदि इतना स्वत्व आप मुझे दें तो मैं इस कार्यमें हाथ डाल सकता हूं।" राणाजी इस बातपर राजी हुए। तब अमरचन्दने सब कारीगरोंको इकट्ठा करके एक रास्ता बनवाया और कुछ ही दिनोंमें एकलिङ्गगढ़की चोटीसे तोपोंकी ध्वनि करके राणाजीका अभिवादन किया।

माधाजी सिन्धियाने उदयपुरको उत्तर पूर्व और दक्षिणसे पूरी तरह घेर लिया था, केवल पश्चिम ओरका स्थान उसके आक्रमणसे बचा था। वह पश्चिम ओर घेरा न कर सका, इसका कारण यह था कि उस ओर लम्बा चौड़ा उदयसागर तथा उसके किनारेके दुर्गम पर्वत और जङ्गली वृक्ष घेरा करनेमें रुकावट डालते

थे। इसी रास्तेसे नागरिक लोग जब आवश्यकता होती तब नगरके बाहर जाते और गिह्लोटकुलके पुराने मित्र भील भी इसी मार्गसे उनके भोजनादिकी सामग्री नावोंमें रखकर लाते। मेवाड़के प्रधान प्रधान सरदार शत्रुके पक्षमें थे; एक सिन्धी सेनाको छोड़ दूसरा कोई राणाजीका सहायक नहीं था। इसी सेनाके विश्वास पर सब बातें निर्भर करती थीं। पर राणाजीके दुर्भाग्यसे इस सेनाके भी लोग बिगड़ खड़े हुए और अपनी तनखाहके लिये महा उपद्रव मचाया। यह देखकर भी कि राज्यमें अनर्थ बढ़ रहा है उन मूर्खोंको तनिक दया न आई! वे तनखाह के लिये केवल जबानी बातें कहकर ही चुप न रहे बल्कि इसके लिये उन्होंने राणाजीका शरीर तक स्पर्श किया! एक दिन राणाजी राजमहलमें जा रहे थे इतनेमें इन सिन्धी सैनिकोंने उनका कपड़ा पकड़कर खींचा। उनसे छुटकारा पानेके लिये राणाजीने जोरसे कपड़ेको झटका दिया। वस्त्र फट गया और वही फटा वस्त्र पहने राणाजी अन्दर गये! स्वयं अपने जल्दबाज स्वभावके कारण उनको यह अपमान भोगना पड़ा। वे अधिकतर सङ्कटमें पड़ते गये और उनकी सब आशाएँ लोप होती गईं। जो सिन्धी सैनिक उनके एकमात्र सहायक थे वे भी इस समय विद्रोही हो गये! फिर अब क्या उपाय था? उनको चारों ओर विपत्ति की मूर्त्तियां दिखाई देने लगीं। रघुदेव नामक उनका एक "धाय भाई" था। वह झाला सरदारका उत्तराधिकारी बनकर मन्त्रित्व करता था। इस सङ्कटके समय उसने राणाजीको यह सलाह दी—"आप उदयसागर पार करके मण्डलगढ़ को भाग जायँ।" ऐसी डरपोकलोगोंकीसी सलाह देकर रघुदेवने निस्सन्देह अपनी अयोग्यता प्रकट की, पर राणाजीने उसकी बातपर ध्यान न देकर सालुम्ब्रा-सरदारसे राय पूछी। उन्होंने दुःखके साथ उत्तर दिया—"यह मेरी समझमें नहीं आता है कि इस सङ्कटके समय कौनसा उपाय करनेमें भलाई होगी। आप अमरचन्दको बुलावें।" तदनुसार अमरचन्द बुलाये गये और इस विपत्तिके दूर करनेका भार उनपर डाला गया। उन्होंने कहा—"इस कठिन कार्यका भार अपने ऊपर लेना कोई पसन्द नहीं करता और सच तो यह है कि मुझे भी यह भार अपने ऊपर लेना पसन्द नहीं है। महाराज यह बात भली भांति जानते हैं कि इससे पहले मेवाड़राज्यपर कितने घोर सङ्कट पड़ चुके हैं और इस दासने किन

उपायोंसे उन अनर्थोंको दूर किया है । इस समय पिछले समयोंकी अपेक्षा कितनी बढ़कर विपत्तिका सामना है सो आप समझते ही हैं । ऐसी अवस्थामें फिर मुझे उन्हीं उपायोंका अवलम्बन करके इन उपद्रवोंको दूर करना पड़ेगा ।” कुछ देर रुककर फिर कहा - “और मेरे स्वभावमें एक दोष है जो शायद आप जानते ही हैं । मेरा चित्त किसीके अधीन रहना नहीं चाहता । मैं जहां रहता हूं सबका अफसर बनकर रहता हूं ; जो काम करता हूं उसपर किसीकी बुद्धि चलने नहीं देता;—किसी गुप्त मन्त्री या परामर्शदाताको मैं नहीं मानता । आपका खजाना खाली है, सैनिक विद्रोही हैं, खाने पीनेकी चीजें खर्च हो गई हैं, ऐसी अवस्था में यदि आप मुझपर भरोसा करना चाहते हैं तो शपथ करके कहिये कि जो मैं आज्ञा करूँगा वह चाहे न्याय हो या अन्याय हो, उचित हो या अनुचित हो, भला हो या बुरा हो, कोई उसमें हस्तक्षेप नहीं करेगा । फिर मनुष्यमें जितना काम करनेकी सामर्थ्य है उतना मैं करनेकी चेष्टा करूँगा । परन्तु सुन लीजिये कि “न्यायी अमर अन्यायी होगा और अपने पूर्व स्वभावके बिलकुल विरुद्ध काम करेगा ।”

राणाजीने भगवान् एकलिङ्गके नाम शपथ करके कहा—“आपकी सब इच्छाएँ पूरी होंगी । आप जो कहेंगे वही होगा; जो मांगेंगे वह आपको दिया जायगा । और तो क्या, यदि आप रानीका रत्नहार और नथ मांगेंगे तो वह भी मैं आपको दूंगा ।” राणाजीके “धाय भाई” रघुदेवकी अनुचित और डरपोकोंकीसी सलाह सुनकर अमरचन्दको बहुत क्रोध आ गया था; इस समय उसको सामने देखकर क्रोध और भी उबल पड़ा । बड़े तिरस्कारके साथ उन्होंने उससे कहा—“तुम्हारी जैसी दशा और समझ है उसके अनुसार तुमने राय दी । भला यदि राणाजी उदयपुर से मण्डलगढ़ भाग जाते तो वहां कौन उन्हें बचाता ? और तुम्हें ही कौनसा ऐसा गुप्त उपाय मालूम है जिससे तुम अपना बचाव कर सकते हो ? यह कार्य तुम्हारे ही योग्य है । राज्यकार्य देखनेकी अपेक्षा अब तुम अपना वही पुराना काम करो, अर्थात् भैंस चराना और दूध बेचना । क्योंकि वह काम तुम्हारा कुलधर्म और तुम्हारी बुद्धिके बिलकुल योग्य है । तुमको क्या तुम्हारे राणाजीको भी अभी राजकार्य सीखने पड़ेंगे ।” अमरचन्दकी इस तेजस्विता और निडर व्यवहारसे राणाजी

और उनके सब सरदार उनसे दबे। इसके बाद अमरने आंगनमें जाकर सब सिन्धी सैनिकोंको बुलाया और कहा—"आओ, मेरे साथ आओ। तुम्हारी तनखाहका जो रुपया बाकी है मैं उसको चुकाता हूं; पर निश्चय जानना कि यदि कार्यमें तुमने सफलता न प्राप्त की तो सब दोष मेरे सिर पड़ेंगे।" जिन विद्रोही सैनिकों ने अभी राणाजीका अपमान किया था वेही इस समय चुपचाप कठपुतलियोंकी तरह अमरके पीछे पीछे चले। अमरचन्दने उनके बाकी रुपयेका हिसाब करके दूसरे दिन चुकानेकी प्रतिज्ञा की। इसके बाद उन्होंने कर्मचारियोंसे खजानेकी कुञ्जी मांगी, पर कुञ्जी न देकर डरके मारे वे दूर भागे। तब अमरचन्दने खजाने के सब दरवाजे तोड़ डाले और जो कुछ चांदी सोना था सबका रुपया कर लिया और रत्नादिककी गिरवीं रखा। इस उपायसे जो रुपये संग्रहीत हुए उनसे सैनिकोंका वेतन चुकाया गया; बारूद गोली गोले अस्त्रशस्त्रादि और खानेपीनेकी चीजोंका प्रबन्ध किया गया। इस प्रकार जो नवीन शक्ति बनी उसकी सहायतासे अमरचन्द छ: महीने तक शत्रुओंका सामना करनेके योग्य हो गये।

नकली नरेश रत्नसिंहने राणाजीकी अधिकांश "खास जमीन" पर अधिकार करके उदयपुरके नीचेतक अपना आधिपत्य जमा लिया था; परन्तु प्रतिज्ञाके अनुसार सिन्धियाको रुपया न देनेके कारण बड़े सङ्कटमें पड़ा। चतुर महाराष्ट्र लोग समयको बड़ा अमूल्य रत्न मानते हैं। वृथा समय नष्ट न करके उन्होंने अमरचन्दसे सन्धि करनेकी इच्छा प्रकाश की और उनसे कहला भेजा कि यदि आप ७० लाख रुपये दे सकें तो हम रत्नसिंहका साथ छोड़ देंगे। अमरचन्दने यह बात स्वीकार कर ली और सन्धिका प्रबन्ध करना आरम्भ किया। सन्धिपत्र तैयार हुआ। जब दोनों ओरसे उसपर हस्ताक्षर हो गये तो सिन्धियाने सुना कि शीघ्र ही किसी आक्रमणसे बहुत लाभ होनेकी सम्भावना है। यह समाचार पाते ही सिन्धियाका लोभ बढ़ गया और अमरचन्दको उसने तुरन्त कहला भेजा कि "यदि २० लाख रुपये और न मिलेंगे तो सन्धि पक्की नहीं मानी जायगी।" यह सुनते ही अमरचन्दके क्रोधका ठिकाना न रहा। उन्होंने सन्धिपत्रको टुकड़े टुकड़े कर डाला और सब टुकड़े सिन्धियाके पास भेज दिये। विपत्तियां बढ़नेके साथ साथ उनका साहस और तेज भी बढ़ने लगा। जो लोग इससे पहले बहुत ही निराश हो गये

थे अमरचन्दने अपने साहस और तेजसे उनके हृदयोंको भी उत्साहसे भर दिया। सिन्धी सेना तथा विश्वासी राजपूत सरदारों और सैनिकोंको इकट्ठा करके उन्होंने सब बातें उनको अच्छी तरह समझाईं। उनमें वक्तृता देनेकी अच्छी शक्ति थी। वक्तृता ऐसी चीज है कि उसके द्वारा मनुष्यके हृदयके अन्तर्भाग तक असर पहुंचाया जा सकता है। सैनिकों और सरदारोंके हृदयोंपर अमरचन्दकी वक्तृताका असर हुआ। उनका उत्साह बढ़ानेके लिये अमरने उनको जड़ाऊ आभूषण दिये तथा और भी अनेक बहुमूल्य चीजें उपहारमें दीं। ये सब चीजें खजानेमें बेकाम पड़ी थीं। राजनीतिज्ञ अमरचन्दने इन चीजोंका सदुव्यवहार करके अपनी कार्यदक्षताका खूब परिचय दिया। नगर और आसपासके गांवोंके गृहस्थों और व्यापारियोंके पास जितना अन्न मिला सब उन्होंने खरीद लिया और खुले आम बाजारोंमें वह अन्न भेजकर सब तरफ मुनादी करा दी कि प्रत्येक योद्धा अर्जी भेजनेसे छः महीनेको खुराक पा सकेगा। इससे पहले अन्न रुपयेका केवल आध सेर बिकता था; इस समय अमरचन्दने कहांसे इतना अनाज इकट्ठा कर लिया इस विषयमें सबको विशेषकर शत्रुओंको आश्चर्य हुआ। सिन्धी सैनिकोंका असन्तोष बिलकुल मिट गया। अपनी विश्वस्तता प्रकट करनेके लिये बड़े उत्साहमें भरे हुए वे सब एकत्र होकर दरबारमें राणाजीके पास गये। वहां उनके सरदार आदिलबेगने * धीरता और नम्रताके साथ कहा—"महाराजा साहब! हमलोगोंने आपका नमक खाया है और आपके मुतबर्रिक खान्दानके हमपर हजारहा इनायात हैं। मैं तमाम फौजकी तरफसे कुरान छूकर अर्ज करता हूं कि हममेंसे कोई आपका साथ न छोड़ेगा। आजसे उदयपुर ही हमारा वतन हुआ;—हम इसके लिये अपनी जानोंको कुर्बान करेंगे। अब तनखाहकी भी जरूरत नहीं है। जिस वक्त खानेकी चीजें हमारे पास न रहेंगी हम जानवरोंका गोश्त खाकर जिन्दगी बसर करेंगे। जब वह भी न मिलेगा तो मैदानमें जाकर गनीमसे † लड़कर बहादुरीके साथ अपनी जानें दे देंगे।" तेजस्वी अमरचन्दने सिन्धी सैनिकोंके हृदयमें जो उत्साह भर दिया था आज उसका प्रत्यक्ष प्रमाण दिखाई दिया।

* इसके पुत्र मिरजा अब्दुर्रहीम बेगको राणाजीने एक जागीर दी थी।
† गनीम—अर्थात् शत्रु।

उनकी ये बातें सुनकर राणाजीका हृदय विगलित हो गया और उनके नेत्रोंसे आंसू निकल पड़े ! आज मानों पत्थर पसीजा—वज्रमें ठण्डक पहुंची । उनको रोते देखकर सिन्धियों और राजपूतोंने बड़े जोशके साथ जयगर्जना की। राजपूतों के इस उत्साहकी ध्वनि सिन्धियाके कानोंतक पहुंची । फिर उत्साहित राजपूतोंने उसकी आगेवाली सेना पर गोले बरसाकर अपने उत्साहका पूरा परिचय दिया। राजपूतोंकी वीरतारूपी आगका यह आकस्मिक प्रकाश देखकर सिन्धियाके मनमें अनेक प्रकारकी शङ्काएँ पैदा होने लगीं और आखिर अपने बचावके लिये महाराष्ट्रोंने फिर सन्धिपत्र तैयार करनेकी प्रार्थना की। इस प्रकार अमरचन्दकी जीत हुई। उन्होंने चतुर मराठोंको कहला भेजा कि "और भी छः महीनेतक घेरेका कष्ट उठानेमें जो रुपये खर्च हुए हैं वे प्रतिज्ञा किये हुए रुपयेमेंसे काट लिये जावेंगे। यह बात यदि आपको स्वीकार हो तो सन्धि हो सकती है, नहीं तो युद्धके लिये तैयार होइये।" चतुर सिन्धिया आज राजपूतोंकी चतुराईके जालमें फँस गया! अन्तमें ६३॥ लाख रुपये लेकर उसने अमरचन्दसे सन्धि कर ली।

जवाहरात और चांदी सोनेसे तथा सरदारोंकी नई नई जागीरें देकर राणाजीने तेंतीस लाख रुपये इकट्ठे करके सिन्धियाको दिये और बाकी रुपया अदा करनेके लिये जमीन गिरवीं रखने लगे। इसके लिये जीद, जीरण, नीमच और मोरवान आदि कई जिलोंका अलग अलग बन्दोबस्त किया गया। यह नियम किया गया कि इन जिलोंका प्रबन्ध दोनों राज्योंके कर्म्मचारी करें और वर्षमें एकबार उनके हिसाबकी निकासी हो । सन्धि हो गई । संवत् १८२५ से १८३१ तक सन्धिके नियमोंका पूरी तरह पालन हुआ, परन्तु आखिरी वर्षमें सिन्धियाने राणाजीके कर्म्मचारियोंको दूर कर दिया; अतएव ये जिले मेवाड़के अधिकारसे निकल गये। संवत् १८५१ में ईश्वरकी इच्छासे सिन्धियाका भाग्य बिगड़ा तो राणाजीने फिर ये जिले पाये;—पर बहुत थोड़े दिनोंके लिये । पुनः वे उनके अधिकारसे निकल गये। संवत् १८३१ में मराठे सरदार पेशवाकी बेड़ी तोड़कर स्वतन्त्र हो जानेकी चेष्टा करने लगे । सिन्धियाने अपने बसाये हुए राज्यके लिये ऊपरके सब जिले रखकर केवल मोरवान होलकरको दिया। मेवाड़का ऐसा दुर्भाग्य था कि इस राज्यचयके थोड़े ही दिन बाद नीमहेड़ा नामक जिला भी राणाजीके

हाथोंसे निकल गया। होलकरने सिन्धियासे मोरवान पानेके एक वर्ष बाद राणा जीसे यह नीमहेड़ा मांगा और डराया धमकाया कि यदि न दोगी तो सिन्धिया की तरह मैं भी कार्रवाई करूँगा। राणाजीका बिलकुल दुर्भाग्य था नहीं तो वीर-श्रेष्ठ महाराज बप्पारावलके वंशधर होकर वे महाराष्ट्रोंसे क्यों डर जाते और क्यों होलकरकी अन्याय आज्ञा झटपट मान लेते!

इस प्रकार संवत् १८२६ में उदयपुरको सिन्धियाके आक्रमणोंसे छुटकारा मिला। इन आक्रमणोंसे मेवाड़राज्यकी जो बहुतसी उपजाऊ भूमि राणाजीके हाथोंसे निकल गई थी उसका हाल पहले लिखा जा चुका है। पर यह अवश्य स्मरण रखना चाहिये कि ये सब जिले बेचे या सदैवके लिये मेवाड़के अधिकारसे निकल नहीं गये थे; केवल गिरवीं रखे गये थे *। परन्तु इससे भी मेवाड़की बड़ी हानि हुई और इस हानिसे राज्यका अधःपतन शीघ्र शीघ्र होने लगा। यद्यपि मेवाड़की शोचनीय अवस्थाके कारण राणा लोग इन जिलों पर फिर अधिकार न कर सके, पर तौभी कभी उन्होंने उनपरसे स्वत्व नहीं त्यागा। सन् १८१८ ई० की १० वीं जनवरीको अंगरेजोंके साथ राणा भीमसिंहकी जो सन्धि हुई थी उसमें राणाजीके दूतोंने यह प्रस्ताव उठाया था; परन्तु दुःखकी बात है कि उसपर ध्यान नहीं दिया गया। यह बात यथास्थान विस्तारके साथ लिखी जायगी।

वीरवर तेजस्वी अमरचन्दके मुकाबलेमें न ठहरकर जिस दिन महाराष्ट्र लोग अपने दलबलके सहित उदयपुरसे चले गये उस दिनसे नकली राणा रत्नसिंहके आशावृक्षकी जड़ कट गई। इससे पहले उसने बहुतसे दुर्ग अपने अधिकारमें कर लिये थे और उदयपुरके नीचेतक दृढ़ताके साथ अपने पांव जमा लिये थे; परन्तु अब सब व्यर्थ हुआ। दूसरोंकी सहायता और अनुकूलतासे उसने जिन कई नगरों दुर्गों और गांवों पर अधिकार जमा लिया था वे धीरे धीरे एक एक करके उसके हाथसे निकल गये। राजनगर, रायपुर और अन्तल्ला ये तीनों फिर राणाजी

* केवल एक छोटी मिलोनी (वर्त्तमान गङ्गापुर) और उसके साथकी सब भूमि पूरी तरह मेवाड़से अलग हो गई थी। इसका कारण यह था कि यह स्थान सिन्धियाकी पत्नी गङ्गाबाईको दिया गया था।

को मिले। रत्नसिंहको छोड़कर बहुतसे सरदार उदयपुर आये और राणाजीकी कृपासे उन्होंने अपनी पहलेकी जागीरें पाईं। रत्नसिंहके सहायक धीरे धीरे बहुत कम हो गये। केवल दीप्राके मन्त्री और मेवाड़के सोलह श्रेष्ठ सरदारोंमेंसे जो कई उसके पक्षमें हो गये थे उनमेंसे देवगढ़ भिण्डीर और आमेर इन तीन के सरदारोंको छोड़ बाकी सबने उसका पक्ष त्याग दिया। ये झगड़े शीघ्र नहीं मिट गये। आखिर संवत् १८३१ में उक्त तीनों सरदार भी मेवाड़के उर्वर गोढ़ार राज्यको छोड़ राणा अरिसिंहके पक्षमें आये। यह हराभरा गोढ़ार प्रदेश मेवाड़ के दूसरे सब स्थानोंकी अपेक्षा अधिक उपजाऊ और मूल्यवान् है। इसकी सीमाके अन्दर जो सामन्त रहते हैं वे दूसरे सामन्तोंकी अपेक्षा मेवाड़के अधिक भक्त और अनुरक्त होते हैं। रणोत, राठौड़ और सोलङ्की बहुत दिनोंसे कैसी राजभक्तिका परिचय देते आये हैं? गोढ़ारकी प्रायः अधिकांश जागीरें सामन्तप्रथाके अनुसार उक्त सरदारोंके पास थीं। वे तीन हजार घोड़े और बहुतसे पैदल सैनिक रखकर निश्चिन्तताके साथ अपनी अपनी जागीर भोग करते थे। जोधपुरके बसनेसे पहले सम्मानसूचक "राणा" उपाधिके साथ यह गोढ़ार प्रदेश मन्दोरके परिहार राजासे मिला था। राठौड़वीर योधके राज्यसमयमें सीसोदीय चण्डके पुत्रके प्राण जानेके बाद किस प्रकार इस प्रदेशकी उत्तर सीमा निर्द्धारित हुई थी सो बहुत पहले लिखा जा चुका है। नकली नरेश रत्नसिंहके कमलमोरमें रहनेके समय अरिसिंह ने जोधपुरके राजा विजयसिंहको गोढ़ार राज्यका शासनकार्य सौंपा। इसका एक कारण था। कमलमीरके गोढ़ारके निकट होनेके कारण राणाजीने आशङ्का की थी कि अवसर पाकर रत्नसिंह उसे ले लेगा। इसी आशङ्कासे उन्होंने विजय सिंहको उसे दिया। इस अवसरपर दोनोंने जो प्रतिज्ञापत्र लिखा वह अबतक विद्यमान है। उसके अनुसार मारवाड़का राजपुत्र राणाजीकी सहायताके लिये उक्त प्रदेशसे मिलनेवाले करसे तीन हजार सैनिक रखता है। दुष्टोंकी दुष्टतासे यदि अरिसिंह असमयमें ही इस संसारसे न चले जाते तो गोढ़ार राज्यका अवश्य उद्धार कर लेते। पर यह उनके भाग्यमें नहीं लिखा था।

वासन्तिक आखेट (आहेरिया) राजपूतोंमें एक पुराना महोत्सव है; पर इससे मेवाड़की बहुत बार बहुतसी हानियां हो चुकी हैं। इस आहेरियाके महोत्सवके

अवसर पर इससे पूर्व मेवाड़के तीन राजे अपने प्राणोंसे हाथ धो चुके थे। इसीसे किसी राजपूत सतीने सहमरणके समय जलती हुई चितामें बैठकर कहा था— "आहेरियाके शिकारके समय यदि राणा और राव एकसाथ आवेंगे तो दोनोंमेंसे एकके प्राण अवश्य जायँगे।" पर अरिसिंह उस पतिव्रताकी पवित्र भविष्यद्वाणीकी परवा न करके शिकार खेलने गये। शिकार खेलकर वे नगरको लौट रहे थे इतनेमें हाड़ा राजकुमार अजितने उनकी ओर घोड़ा दौड़ाकर अपने तेज भालेसे उनपर वार किया। राणाजी चोट खाये हुए शेरकी तरह अजितकी ओर पलटे और जोरसे चिल्लाकर यह कहा—"यह तूने क्या किया?" यह कहकर राणाजी मुर्दा होकर घोड़ेसे भूमिपर गिरना चाहते थे कि इतने होमें इन्द्रगढ़के दुष्ट सरदारने तलवारसे उनका सिर काटकर अलग कर दिया! अजितके पिता अपने पुत्रकी दुष्टताका हाल सुनकर उससे इतने नाराज हुए कि उस दिनके बाद फिर उन्होंने कभी उसका पापमुख नहीं देखा। कहा जाता है कि हाड़ा जातिकी जाति अजितकी इस काररवाईसे बहुत चिढ़ गई। इस भीषण हत्याके समय एक रक्षकके सिवा राणा अरिसिंहके साथ और कोई नहीं था। उनके सरदारों और सामन्तोंको जब इस बातकी सूचना मिली तो वे डेरे खेमे और सब चीजें छोड़कर भयके मारे इधर उधर भाग गये।

कहा जाता है कि बूंदीके हाड़ा-राजकुमारने मेवाड़के सरदारोंके कहनेसे यह हत्याकार्य किया। यह तो पाठक जानते ही हैं कि सरदार लोगोंकी अरिसिंहके ऊपर भक्ति और विश्वास नहीं था बल्कि वे उनसे बहुत नाराज थे। राणाजी भी सरदारोंकी इस नाराजगीको समझते थे और उनसे बदला लेनेका मौका ढूंढ़ रहे थे। इस विषयमें केवल एक दृष्टान्त यहां लिखा जाता है। जिस सालुम्ब्रा सरदारके पिताने राणाजीके लिये उज्जैनकी लड़ाईमें अपने प्राण दे दिये थे उनपर सन्देह करके एक दिन राणाजीने उनको अपने पास बुलवाया और बिदाईका पान (बीड़ा) देकर राज्यके बाहर निकल जानेकी आज्ञा दी। सालुम्ब्रासरदारको बड़ा आश्चर्य और दुःख हुआ और उन्होंने राणाजीके इस आकस्मिक असन्तोष और कठोर आज्ञाका कारण पूछकर क्षमा मांगी। पर उन्होंने एक न सुनी बल्कि पहलेसे भी कठोर स्वरमें उस चूंड़ावत सरदारसे कहा—"यदि तुम मेरी

आज्ञाका पालन न करोगे तो इसी समय तुम्हारा सिर काट लिया जायगा।" निरुपाय और लाचार होकर सालुम्ब्रासरदारको राणाकी आज्ञा माननी पड़ी; पर जानेके समय वे जोर देकर कहते गये—"मैं जाता हूं परन्तु इससे आपका और आपके परिवारका विशेष अनिष्ट होगा।" अपमानित चूंडावत वीरने जाते समय जो यह वाक्य कहा सो शीघ्र फलवान् हुआ। पर राणाजीकी हत्याका एक और कारण बताया जाता है। कहा जाता है कि मेवाड़की सीमा पर बिलेता नामक एक बहुत छोटासा गांव था जिसमें केवल कुछ आम पैदा होते थे। वह मेवाड़के अन्तर्गत था, लेकिन बूंदीनरेशने अपना कहकर जबर्दस्ती उसपर अधिकार जमा लिया। यही बात झगड़ेकी जड़ हुई। अस्तु, ऊपर लिखे दोनों कारणोंमेंसे चाहे कोई भी सच हो पर दुष्ट बूंदी-राजकुमारने गुप्त रूपसे राणा अरि-सिंहको हत्या करके बिलकुल कापुरुषता और पशुवत् आचरणका परिचय दिया।

हत्याके बाद कापुरुष सरदार और सैनिक अरिसिंहकी लाशको छोड़कर चलेगये; केवल राणाकी एक उपपत्नी वहां रह गई। उसीने उनकी अन्तिम क्रिया की। चन्दनकी उत्तम लकड़ियोंसे एक बड़ी चिता तैयार की गई और घी, फूलोंकी माला, इत्यादि चीजें शीघ्र एकत्रित हो गईं। उपपतिके मृत शरीरको गोदमें लिये हुए वह सती चिता पर बैठी। सामने बर्गदका एक बहुत बड़ा वृक्ष था। सहमरणके लियेउत्सुक उस सतीने उसी वृक्षराजको गवाह बनाकर पतिके मारने वालेको यह कठोर शाप दिया—"वनस्पति! तुम गवाह रहना; यदि स्वार्थके लिये विश्वासघात करके मेरे प्यारे पतिके प्राण लिये गये हों तो निश्चय जानना कि दो महीनेके अन्दर उस पाखण्डीके सब अङ्ग गल जायँगे;—वह संसारमें वि-श्वासघातक और राजघाती कहा जायगा। परन्तु यदि किसी पुराने झगड़े पर पहलेके किये हुए किसी अपकारका बदला लेनेके लिये यह कार्य किया गया हो तो कुछ भी न होगा। देखना, तुम साक्षी रहना। यदि मैं सती होऊँ, यदि महाराज अरिसिंहके सिवा किसीको मेरा हृदय प्यार न करता हो, तो मेरी यह बात अवश्य सफल होगी।" सतीका वाक्य समाप्त होते न होते ही उस बटवृक्षकी एक बड़ी शाखा सहसा टूटकर जमीन पर गिरी;—त्योंही चिताकी आग बड़े जोरसे भड़क उठी;—अरिसिंहके मृत शरीरको गोदमें लिये हुए निश्चिन्तभावसे उस राजपूत सतीने जलकर अपने प्राण त्याग दिये।

राणा अरिसिंह दो पुत्र छोड़कर मरे। उनमें बड़ेका नाम हम्मीर था और छोटेका भीमसिंह। हम्मीर संवत् १८२८ वै० (सन् १७७२ ई०) में मेवाड़की गौरवहीन गद्दी पर बैठे। ये गिह्लोटकुलका एक प्रातःस्मरणीय नाम रखकर संसार-भूमिमें आये; पर इस पवित्र नामको सार्थक नहीं कर सके। उस समय उनकी उमर बारह वर्षकी थी; इसलिये उनकी माताने राजकार्यका भार अपने ऊपर लिया। इस समय मेवाड़में बहुतसे अनर्थ जमा हो गये थे। एक तो वहां दीन दशा थी ही और महाराष्ट्रोंने उपद्रव मचा ही रखा था, तिसपर बालकका राजत्व और स्त्रीका राज्यशासन हुआ—और वह स्त्री भी मनमाना काम करने वाली! अतएव महाकवि चन्दभट्टके कथनानुसार अब मेवाड़की दुर्दशामें कुछ भी सन्देह नहीं था। इस भीषण सङ्कटके समय साम्प्रदायिक झगड़े उठ खड़े हुए जिन्होंने और भी अनर्थ पर अनर्थ किया। चूंडावतों और शक्तावतोंमें सदासे विरोध चला आता था; आज मेवाड़की इस गिरी अवस्थामें अपनी अपनी प्रधानता पाने के लिये वे एक दूसरेका खून गिरानेका उद्योग करने लगे। शक्तावत सरदार राजमाताकी नीति पर चला। इधर सालुम्ब्रासरदारने अरिसिंहके किये हुए अपमानका बदला लेनेके लिये उनकी विधवा रानी (राजमाता) का विरोध किया। इस भीषण साम्प्रदायिक झगड़ेने मेवाड़की बड़ी हानि की। थोड़े ही दिनोंमें राज्यकी रक्षा करना बहुत कठिन हो गया। मौका पाकर छोटे छोटे डाकू भी लूट पाट मचाने और गरीब किसानोंको सताने लगे। संक्षेप यह कि उस समय मेवाड़की बड़ी कुदशा थी।

तेजस्वी अमरचन्दके उत्साह और उत्तेजनसे सिन्धी सैनिकोंने विशेष राजभक्ति दिखलाई थी, पर अरिसिंहके मरते ही फिर उन्होंने पुराना ढङ्ग अख्तियार किया और जबर्दस्ती राजधानी पर अधिकार करके अपने बाकी रुपयेके लिये सालुम्ब्रा-सरदारको कष्ट पहुंचाना आरम्भ किया। राजधानीकी रक्षाका प्रबन्ध करनेका भार सालुम्ब्रासरदारके ही ऊपर था, अतएव रुपये पानेके लिये उन सभोंने उनको गर्म लोहे * पर बिठानेका विचार किया; इतनेमें बूंदीसे अमरचन्द आ गये।

* जिसको दण्ड देना होता था उसे राजपूत लोग गर्म लोहेपर बैठाते थे। दण्ड देनेकी और कई रीतियोंके अतिरिक्त उनमें यह भी एक रीति थी।

इनके आतेही सिन्धियोंने अपना विचार छोड़ दिया। यहां आकर अमरचन्दने दूसरे प्रतिद्वन्द्वियोंके आक्रमणसे बालक राजकुमार हम्मीरका हक बचानेका निश्चय किया। पर संसारमें बहुत दिनोंतक रहकर भिन्न भिन्न मनुष्यके स्वभावके विषयमें उनको बहुत जानकारी हो गई थी। वे जानते थे कि बहुत लोग मन्त्री होना चाहते हैं इसलिये उनको इस पदपर देखकर बहुतोंको ईर्ष्या होगी। इसके सिवा, उन्होंने राजकुमारका हक बचानेका जो निश्चय किया था उसके विषयमें सोचा कि लोग कहेंगे कि इसमें इनका कुछ स्वार्थ है। अतएव जिसमें कि किसीको किसी तरहका जरा भी सन्देह करनेका मौका न मिले उन्होंने अपनी समग्र सम्पत्तिकी एक सूची बनाकर अपने पास रख ली और सब चीजें हम्मीरकी माताके पास भेज दीं। सोने चांदीकी चीजें, जवाहरात, यहांतक कि तोशाखानेके कपड़े और सब बर्तन भी उनके पास भेज दिये। अमरचन्दकी यह उदारता देखकर सबको आश्चर्य हुआ। जिनके मनमें अबतक उनके विरुद्ध हिंसा और सन्देह पैदा हुआ था वे अब सन्तुष्ट हो गये। राजमाताने उनसे उन सब चीजोंको लौटा लेनेके लिये बारम्बार अनुरोध किया; पर दृढ़प्रतिज्ञ अमरने उनका अनुरोध न माना; केवल जो कपड़े एकबार व्यवहारमें आ चुके थे उन्होंको वापस लेना स्वीकार किया।

हम्मीरकी माताका अधिक अधिकार प्राप्त करनेका लोभ दिन पर दिन बढ़ता गया। वह स्वयं तो बड़ी बुद्धिमती स्त्री थी, पर दुःखकी बात यह है कि उसको एक दुष्टा साथिन थी जिसकी सलाहसे वह सब काम किया करती थी। वह दुष्टा जो कहती हम्मीरकी माता वही करती; यहांतक कि उसकी सलाहके बिना एक पांव भी न चलती। तिसपर विशेषता यह थी कि उस दुश्चरित्रा साथिनका सलाहकार एक कमसमझ युवक कर्म्मचारी था; अतएव एक प्रकार उस युवककी ही रायसे सब काम होते। वह अपने घरमें बैठा बैठा जो जो ढङ्ग सोचता उन्हींके अनुसार हम्मीरकी माताको कार्य करना पड़ता। पर वह अधिक दिनोंतक इस संसारमें नहीं रहा। खैर, जो हो, उसकी या उसकी मित्र (अपनी साथिन) की रायमें पड़कर राजमाता धार्म्मिक अमरचन्दके हरएक कामका विरोध करने लगीं। उन्होंने जरा भी इस बातका विचार नहीं किया कि अमरचन्द उसके

पुत्रके स्वार्थकी रक्षाके लिये किस प्रकार अपने हानि लाभका ध्यान छोड़े हुए हैं। वास्तवमें उनके सिरपर ऐसी नासमझी सवार थी कि वेह चूंडावतोंसे सहायता लेने और न्यायवान् अमरके हरएक कार्यका विरोध करने लगीं। पर कर्त्तव्यपरायण अमरचन्द इन बातोंसे नहीं घबराये। अपने साथी सिन्धी सैनिकोंकी सहायतासे अपने पद पर वे दृढ़ रहे और मराठोंको न तो नगरमें प्रवेश करने दिया, न राणाकी जमीनोंपर अधिकार करने दिया। पर आखिर वे भी तो मनुष्य ही थे? क्रूर लोगोंकी ढिठाई और क्रूरता कबतक सहते? जिनके लिये उन्होंने अपना सब कुछ त्याग दिया था वे ही उनके सब उपकारोंको भूल गये और कृतघ्नता छोड़कर उलटे उनका अपमान करने लगे! ऐसी अवस्थामें भला कौन सहृदय आदमी स्थिर रह सकता था? अमरचन्द स्वभावसे ही तेजस्वी थे; जरा भी अपमान उनसे सहा नहीं जाता था। पर मन्त्री होकर उन्होंने बहुत लोगोंका किया हुआ अपमान सहा था। क्यों? केवल बालक राजकुमार हमीरकी स्वार्थरक्षाके लिये। परन्तु आज उसी हमीरकी माताकी शत्रुता करते देखकर उनको बड़ा दुःख, अभिमान, घृणा और क्रोध हुआ; तौभी अपने कर्त्तव्यका पालन करनेमें उन्होंने त्रुटि नहीं की। एक दिन वे बैठे कुछ काम कर रहे थे इतनेमें दुष्टा रामप्यारी उनके पास पहुंची और हमीरकी माताकी ओरसे उनको बहुत बुरा भला कहने लगी। तेजस्वी अमरचन्दके सिरसे पांवोंतक आग लग गई और रामप्यारी (हमीरकी माताकी साथिन) को उन्होंने घरके बाहर निकलवा दिया। वह रोती हुई राजमाताके पास गई और बहुत नमक मिर्च लगाकर उनसे अमरचन्दकी उसने शिकायत की। इससे राजमाताने अपनेको अपमानित समझा और पालकी पर सवार होकर वे सालुम्ब्रासरदारके यहां चलीं। अमरचन्दने सोचा कि यदि ये वहां जायंगी तो अवश्य कुछ गड़बड़ होगी, अतएव तुरन्त दरबारसे उठकर रास्तेहीमें उन्होंने सवारी रोकी और कहारों तथा कर्मचारियोंको आज्ञा दी कि "अभी महलको लौट जाओ।" भला कौन उनकी बात टाल सकता था? लोग लौट गये। जब सवारी राजमहलके द्वार पर पहुंची तो अमरचन्दने राजमाताको प्रणाम करके बड़े धीर और गम्भीर भावसे कहा—"देवि! महलके बाहर निकल कर क्या आपने अच्छा काम किया? क्या इससे आपके महामान्य स्वर्गीय स्वामी

का अपमान नहीं हुआ? स्वामीके मरनेके बाद साधारण कुम्हारकी स्त्री भी कमसे कम छः महीने घरके बाहर नहीं निकलती; पर आप सीसोदीय कुलकी रानी होकर पतिकी मृत्युका अशौच समाप्त होते न होते ही राजमहल छोड़ चली थीं। आप बुद्धिमती हैं; मैं आपको अधिक क्या समझा सकता हूं।— अमरचन्दको आप मित्रके सिवा कभी शत्रु न समझें। अमरचन्द विश्वासघातक नहीं है कि महाराज अरिसिंहके बालक राजकुमारको किसी प्रकारकी हानि पहुंचावेगा। इस समय श्रीमतीसे मेरा यही निवेदन है कि मैं एक बड़े भारी कर्त्तव्यके पालन का उद्योग कर रहा हूं;—इसी पर आपकी और आपके पुत्रोंकी भलाई निर्भर करती है; अतएव मेरे विरुद्ध कोई कारवाई करनेकी अपेक्षा आपको मेरी सहायता करना उचित है। इस समय आप मेरा निवेदन मानें या न मानें, पर मैं निश्चय करके कहता हूं कि जब मैंने प्रतिज्ञा की है तो चाहे कैसी ही रुकावटें और विघ्न पड़ें मैं अपने कर्त्तव्यका पालन अवश्य करूंगा।"

अमरचन्दकी ये मतलब भरी और अच्छी बातें क्रूरहृदया बाईजीराज (राजमाता) को पसन्द नहीं आईं। जबतक अमरचन्द जीवित थे तबतक वे राजमाताकी आंखोंमें कांटेसे खटकते रहे। आखिर जिस दिन यह न्यायवान् धार्मिक मन्त्री इस संसारसे विदा हुआ, जिस दिन उसका पवित्र शरीर राखके रूप में हो गया, उसी दिन इस मनुष्यसंसारकी स्वार्थपरता, विश्वासघातकता और कृतघ्नतासे उसे छुटकारा मिला और उसे स्वर्गसुख मिला। बहुतोंका अनुमान है कि पापिनी बाईजीराजने जहर खिलाकर अमरचन्दकी हत्या की। वह जैसी दुष्टा, लोभ करनेवाली और क्रूरा थी उससे इस बातको सत्य समझनेमें कुछ हर्ज नहीं मालूम होता। हाय! मनुष्य कैसा निष्ठुर कृतघ्न और स्वार्थी होता है और यह संसार कैसा नरकतुल्य है! कौन कहता है कि मनुष्य पशुसे श्रेष्ठ है—और यदि श्रेष्ठ है तो किस गुणसे? यदि हिंसा द्वेष कृतघ्नता स्वार्थपरता और विश्वासघातको ही श्रेष्ठ गुण कहते हों, यदि एक भाईका नाश करके अपना पेट भर लेनेसे श्रेष्ठत्व साबित होता हो, यदि निर्बलोंको दुःख देना ही श्रेष्ठत्व हो, तो ऐसे श्रेष्ठत्वको दूर हीसे नमस्कार है! इससे तो नासमझ पशुओंकी दशा अच्छी। उदारहृदय अमरचन्दने मातृभूमिके उपकारके लिये अपना सब कुछ त्याग दिया;

जिस 'दौलत' के लिये संसारमें असंख्य अनर्थ होते हैं परोपकारके विचारसे उन्होंने उसकी परवा छोड़ दी; पर इसका उनको क्या फल मिला? लोगोंकी नाराजगी, जातिभाइयोंका विद्वेष, इत्यादि! पर कर्त्तव्यपरायण अमरचन्दने अपने कर्त्तव्य-पालनके उद्योगमें ढिलाई नहीं की। परन्तु जिसके लिये उन्होंने इतना कष्ट स्वीकार किया, जिसके लिये लोगोंकी नाराजगी सही, उसी मनुष्यरूपी पिशाचने उनके जीवनपुष्पकी कली तोड़ ली;—विषके द्वारा उनके प्राणोंका अन्त कर दिया।

जो महापुरुष स्वदेशके लिये जीवित रहकर अन्तमें स्वदेशियोंके ही विश्वास-घातसे इस संसारसे बिदा हुआ, वह चाहे किसी देशमें पैदा होता पर गौरववान् हो सकता था। लेकिन मेवाड़का दुर्भाग्य था, इसीसे वहांकी अयोग्य रानीने ऐसे गुणीके गुणोंको नहीं पहचाना। संसारमें और भी अच्छे मन्त्री हो गये हैं, पर अमरचन्दकीसी दीन दशाको कोई नहीं पहुंचा। एक राज्यके मन्त्री होने पर भी वे ऐसे निस्सहाय हो गये थे कि उनकी मृतकक्रिया नगरनिवासियोंने चन्दा करके की! भारतके इतिहासमें यह एक बिलकुल नई बात थी। पर इससे कोई यह न समझे कि भारतवासियोंको ज्ञान नहीं है, या कि वे गौरवके योग्य वस्तुका गौरव नहीं मानते। अमरचन्दकी चाहे कैसी ही अवस्था हुई, परन्तु उनके गुणोंको आजतक कोई भूल नहीं सका है। अबतक यदि राजपूत लोग किसी व्यक्तिमें वैसे गुण पाते हैं तो उसको "अमरचन्द" कहते हैं।

क्रूर राजमाताने नासमझीसे अपने पांवोंमें आपही कुल्हाड़ी मारी। उसने सोचा था कि अमरचन्दकी हत्या करनेके बाद उसके शासनमें रोक टोक करने वाला कोई नहीं रह जायगा; परन्तु थोड़े ही दिनोंके बाद उसका भ्रम दूर हो गया। संवत् १८३१ वै॰ सन् १७७५ ई॰ में बेगू सरदार विद्रोही हो गया। यह एक मेघावत सामन्त था। मेघावत प्रसिद्ध चूंडावत गोत्रकी एक बड़ी शाखा है। राजमाता इसका मुकाबला न कर सकी, वरन् उसने सिन्धियासे सहायता मांगी। चतुर मराठे वीरने अवसर अच्छा समझकर बेगू सरदार पर चढ़ाई की और राणाकी जिस जिस जमीन पर उसने अधिकार कर लिया था सब उससे ले ली*

* जिस सन्धिपत्रके अनुसार इन जिलों पर अधिकार हुआ वह अभीतक उदयपुरमें वर्त्तमान है।

और विद्रोह करनेके कारण उसपर १२ लाख रुपये जुर्माना किया। पर राजमाताने जिस आशासे सिन्धियाको बुलाया था वह पूरी नहीं हुई;—मराठोंने सब जमीन स्वयं ले ली। बालक हम्मीरको उसके पिताकी भूमिका अधिकारी न बनाकर सिन्धियाने अपने दामाद बीरजीको रत्नगढ़, खेरी और शिङ्गोलीका अधिकारी बनाया और बाकी जिले जौथ, बीचोर और नदोई आदि जिनसे लगभग छ: लाख रुपये वार्षिक कर वसूल होता था होलकरको दे दिये। मराठे मेवाड़की इतनीही भूमि हड़प करके शान्त नहीं हुए; संवत् १८३०—३१ में चार * तथा संवत् १८३६ में तीन † युद्धोंका उन्होंने खर्च मांगा। खर्च न मिलने पर उन्होंने और भी मेवाड़की बहुतसी जमीन अपने अधिकारमें कर ली। इस प्रकारके मराठोंके उत्पीड़न और भीतरी झगड़ोंमें पड़कर छोटी उमरमें ही ¶ हम्मीर संवत् १८३८ (सन् १७७८ ई०) में इस संसारसे चल बसे।

जबसे (सन् १७३६ ई० से) मराठोंकी पहली चढ़ाई मेवाड़ पर हुई तबसे लेकर हम्मीरके शासनसमयतक वहांकी कितनी भूमि और धनका क्षय हुआ यह बात यहां पर लिखना हम उचित समझते हैं। इस चालीस वर्षसे अधिक समयमें स्वार्थी मराठोंने मेवाड़की इतनी हानि की कि जिसका अलग अलग वर्णन नहीं हो सकता। उनके उपद्रवोंसे मेवाड़ जो गिरा तो फिर न उठा। अवश्य ही मोगल बादशाह स्वार्थी और प्रजापीड़क थे, अवश्य ही हिन्दुओंके सुख दु:खकी उनको सची परवा नहीं थी, पर वे राज्यके अधिकारी थे और देशके लोगोंको अपनी प्रजा समझते थे; इससे उनके द्वारा बहुत अधिक उपद्रव नहीं होते थे और यदि होते भी थे तो समय समय पर कम हो जाते थे। पर मराठे ऐसे नहीं थे। भारतवासी होकर भी वे भारतवासियोंकी अवस्था और हानि लाभ विचारते नहीं थे। महावीर

* इन चारों बारोंके खर्चोंको निम्नलिखित व्यक्तियोंने लिया था। सं० १८३० में बेगू सरदारके लिये माधाजी सिन्धियाने; १८३१ में बीरजी तापने; १८३१ में अम्बाजी इङ्गलिया, बापू होलकर और दादोजी पण्डितने।

† प्रथम—होलकरकी ओरसे आप्पाजी और मकाजी गीतिया; द्वितीय—सोमाजीके द्वारा तुकाजी होलकर और तृतीय—सोमाजीके द्वारा अलीबहादुर।

¶ अर्थात् केवल १८ वर्षकी उमरमें।

शिवाजी जो उदाहरण छोड़ गये थे उसके अनुसार यदि वे चलते तो मातृभूमिके असीम दुःखोंको अवश्य दूर कर सकते। पर भारतके कर्म्ममें जो लिखा था उसे कौन मिटा सकता था? इसीसे महात्मा शिवाजीकी नीति छोड़कर वे महा अनुचित कार्य करते थे। वे दलके दल खूनके प्यासोंकी तरह देशमें चारों ओर घूमा करते और जहां लूटका जरा भी सुयोग देखते वहांका सब सार ले लेते। देखिये, एक मेवाड़ होके केवल तीन बारमें * १ करोड़ ८१ लाख रुपये खर्च हो गये। इसके अतिरिक्त भिन्न भिन्न व्यक्तियोंसे भी उन्होंने बहुत धन लेकर इकट्ठा किया था। उनके उपद्रवोंके कारण आज मेवाड़की बड़ी खराब दशा है §!

* जिन तीनों बार इतने रुपये खर्च हुए थे उनकी सूची यों है,—

संवत्	१८०८ में राणा जगत्सिंहसे	होलकर	६६ लाख
"	१८२० में राणा प्रताप और अरिसिंहसे	"	५१ "
"	१८२६ में राणा अरिसिंहसे माधाजी सिन्धिया		६४ "
		कुल	१८१ लाख।

§ टाड साहबके समकालीन राणा भीमसिंहने युद्धके खर्चोंकी एक सूची तैयार कराई थी। भीमसिंहके समय तक इस विषयमें जितने रुपये खर्च हुए थे सब उस सूचीमें दर्ज हैं। कुल ४५००००००) रुपये खर्च हुए थे! मराठोंने खर्चके हिसाबमें मेवाड़से इतने अधिक रुपये लिये थे! इसके सिवा जिन जमीनों पर बलपूर्वक अधिकार कर लिया था उनकी सालाना आमदनी २८॥ लाख रुपये थी। यथा—

संवत् १८०८,	रामपुर, भणपुर … … … … …	६ लाख
१८२६,	जीद, जीरण, नीमच, नीमबहेड़ा … …	४॥ "
१८३१,	रत्नगढ़, खेरी, शिङ्गोली, इरनिया, जौथ, नदोई इत्यादि	९ "
१८३१,	गोहार … … … … …	९ "
	कुल	२८॥ लाख रु०।

सोलहवां अध्याय ।

राणा भीमसिंह;—शिवगढ़सम्बन्धी झगड़ा;—हाथसे निकल गई हुई जमीनों पर राणाजीका पुनः अधिकार करना;—अहल्याबाईका राणाजीकी सेनापर आक्रमण करना;—राणाजीकी हार;—चूंडावत सरदारका विद्रोही हो जाना;—सोमजी मन्त्रीकी हत्या;—विद्रोहियोंका चित्तौड़ पर अधिकार करना;—राणाजीका माधाजी सिन्धियासे सहायता मांगना;—चित्तौड़ पर आक्रमण;—विद्रोहियोंका दबना और वशमें होना;—मेवाड़पर शासन करनेका जालिमसिंहका विचार;—अम्बाजीका मुकाबला;—अम्बाजीका "सूबेदार" की उपाधि पाना;—लखोबाके साथ झगड़ा;—झगड़ेका फल;—जालिमसिंहका जहाजपुर पर अधिकार कर लेना;—होलकरका मेवाड़पर आक्रमण करना;—नाथद्वारेके पुजारियोंको कैद करना;—कोटारियोंके सरदारकी वीरता;—लखोबाकी मृत्यु;—मराठे सरदारोंपर राणाकी चढ़ाई;—जालिमसिंहका उनको बचाना;—होलकरका उदयपुर वापस जाकर कठोर कर लगाना;—सिन्धियाका आक्रमण;—कृष्णाकुमारीके साथ विवाह करनेके लिये राजपूतोंमें विवाद और इस कारणसे राजस्थानमें युद्ध;—कृष्णाकुमारीका आत्मत्याग;—मीरखां और अजितसिंह;—उनकी अनुचित कारवाई;—उदयपुरमें सिन्धियाके दरबारमें अंगरेजी दूतका जाना;—अपमानित होकर अम्बाजीका अपनी हत्या आपही कर डालनेका उद्योग;—मीरखां और बापू सिन्धियाका मेवाड़में उपद्रव मचाना;—अंगरेजोंके साथ राणाजीकी सन्धि ।

राणा हम्मीरकी मृत्युके बाद संवत् १८३८ (सन् १७७४ ई०) में उनके बड़े भाई भीमसिंह मेवाड़की गद्दी पर बैठे । चालीस वर्षों में चार नाबालिग राजे मेवाड़की गद्दीपर बैठे थे;—भीमसिंह उनमें चौथे थे । ये आठ वर्षकी उमरमें भाईकी गद्दीपर बैठे और पचास वर्षों तक राज्यशासन किया । इस आधी शताब्दीमें मेवाड़में बड़े बड़े अनर्थ हुए । नाबालिगीका समय बीत जाने पर भी बहुत दिनों तक भीमसिंह अपनी माताकी अधीनतामें गद्दीपर बैठे रहे । इस अधीनताने उनको बहुत बेकाम कर दिया । वे निस्तेज और निरुत्साह हो गये; उनकी बुद्धि इतनी कमजोर हो गई कि उनमें निजकी कुछ भी सामर्थ्य और सोचनेकी शक्ति न रही;

अतएव बहुतसे कुचक्री लोगोंको सलाहके अनुसार उनको चलना पड़ता । नकली राणा रत्नसिंहकी शक्ति यद्यपि बहुत घट गई थी, पर एकदम नष्ट नहीं हो गई थी। परन्तु ये अपनी अयोग्यतासे अन्तमें ऐसे निस्सहाय हो गये कि किसी भट्ट ग्रन्थमें इनका हाल नहीं मिलता; यहांतक कि इनकी मृत्युकी बात भी कहीं नहीं देख पड़ती ।

कैसी बुरी सायतमें घराऊ झगड़ोंने भारतमें प्रवेश किया था ! इनसे भारत कैसा चौपट हुआ ! सच है, अपनी क्षमता बढ़ाना सभी चाहते हैं; पर इसका यह मतलब नहीं है कि न्याय और विवेकको त्यागकर क्षमता बढ़ाई जाय। पर दुःखकी बात है कि राजपूतोंमें इस तरह क्षमता बढ़ानेका विशेष अनुराग पाया जाता है। पहले ही कहा जा चुका है कि चूंडावतोंको राणाजीसे बड़ा मान और अधिकार मिला था । इस समय अर्थात् संवत् १८४० वि० (सन् १७८४ ई०) में उन्होंने अपनी शक्ति और क्षमताका खोटा उपयोग करना या अपने सदाके प्रतिद्वन्द्वी शक्तावतोंका खून बहानेका उद्योग करना आरम्भ किया। कोरावरके अर्जुनसिंह * और आमेतके प्रतापसिंह † सालुम्ब्रासरदारके दो प्रधान सम्बन्धी थे । चूंडावत (सालुम्ब्रा) सरदार अपने इन दोनों सम्बन्धियोंके सहित कौन्सिलका अधिकारी बना रहा और सब सिन्धी सेना तथा सेनापति चन्दन और सादिकको अपने साथ मिलाकर उसने अपना मतलब साधनेका यत्न किया । इतने दिनोंतक वह मौका ढूंढ़ रहा था। इस समय मौका अच्छा देखकर उसने अपने प्रतिद्वन्द्वी शक्तावत-सरदार मोखीमके भिण्डोर नामक किलेको जाकर घेर लिया और तोपें खड़ी करके युद्धका डङ्का बजाया।

शक्तावत गोत्रकी एक छोटी शाखामें संग्रामसिंह नामक एक वीर पुरुष पैदा हुआ था। उसने पीछे मेवाड़में बड़े बड़े प्रसिद्ध काम किये; परन्तु उस समय वह धीरे धीरे प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा प्राप्त कर रहा था । भिण्डोरके घेरेसे कुछ समय पहले यह अपने प्रतिद्वन्द्वी पुरावत सरदारसे झगड़ रहा था। पुरावत सरदारका

* इनके भाई अजितसिंहने ही अंगरेजोंसे सन्धि की थी।

† इनका जन्म प्रसिद्ध जगावत कुलमें हुआ था । ये मराठोंसे लड़ते लड़ते मारे गये थे।

लवा नामक एक दुर्ग था; संग्रामसिंहने जब इस दुर्ग पर * अधिकार कर लिया तब जाकर झगड़ा मिटा। तब उसने अपने कुलके माननीय (शक्तावत) सरदार को सहायता करनेके लिये कमर कसी। चूंडावतोंको भिण्डोर दुर्गका घेरा किये हुए देखकर संग्रामने-अर्जुनसिंहकी जागीर कोराबर पर चढ़ाई की और वहांकी गौयें आदि सब पशुओंको अपने अधिकारमें कर लिया। इन जानवरोंको लिये हुए वह जा रहा था कि रास्तेमें अर्जुनसिंहके पुत्र सलीमसिंहने उसे रोककर उसका मुकाबला किया। कुछ समय तक लड़ाई हुई; आखिर सलीमसिंह मारा गया। अर्जुनसिंहने जब यह हाल सुना तो उसे बड़ा क्रोध हुआ और उसके सिर से पांवोंतक आगसी लग गई। पगड़ी उतार और दूर फेंककर उसने बड़े जोरसे कहा "जबतक मैं बदला न ले लूंगा तबतक यह पगड़ी कभी सिरपर न रखूंगा।" फिर अपने सैनिकोंसे कुछ बहाना करके वह कोराबर होकर शिवगढ़ गया। संग्रामके बूढ़े पिता लालजी शिवगढ़में रहते थे। भीलोंके सुन्दर चप्पन प्रदेशके ऊँचे ऊँचे पर्वतों और जङ्गलके बीच यह किला खड़ा था। यह स्थान बड़ा दुर्गम था और संग्रामसिंहने समझा था कि शत्रु यहांतक नहीं पहुंच सकेंगे, इसीसे अपने बाल बच्चोंको उसने यहां रखा था। पर अर्जुन यहांतक पहुंच गया। वहां जाकर उसने देखा कि रक्षक नहीं हैं। इसके बाद उसने लड़ाईके बाजे बजवाये जिन्हें सुनकर दुर्गके निवासी भाग खड़े हुए। शिवगढ़की औरतें और बच्चे अकेले पड़ गये। वहां अब वृद्ध लालजीके सिवा दूसरा कोई लड़ने भिड़नेवाला पुरुष नहीं था। लालजीकी उमर ७० वर्षकी थी। बाल तमाम पककर सफेद हो गये थे, चमड़े झूल गये थे और चेहरे पर झुर्रियां पड़ गई थीं। तौभी उस सच्चे वीर पुरुषने तलवार लेकर शत्रुओंका मुकाबला किया। लड़ाई हुई। वीर लालजी वीरगतिको गया। शत्रुओंने दुर्ग पर अपना अधिकार जमाया। विजयी अर्जुनने संग्रामसिंहके बालबच्चोंको बड़ी निर्दयतासे मारकर बदला चुकाया। संग्रामकी वृद्धा माता अपने पतिकी लाशके साथ जलकर सती हो गई।

कोराबरके अर्जुनसिंहने प्रतिद्वन्द्वी सम्प्रदायके लोगों पर घोर कठोरता करके शत्रुताकी जो आग भड़काई उसे कोई बुझा नहीं सका। इससे बड़ी हानि हुई।

* संग्रामके वंशधर टाड साहबके समयमें भी इस स्थानके अधिकारी थे।

तिसपर नाबालिग भीमसिंहकी अयोग्यता और मराठोंके अत्याचारोंके कारण राज्य की वह घोर दुर्दशा हुई जिसका वर्णन नहीं हो सकता। - कोई मेवाड़का उद्धार न कर सका ! समर, संग्राम, प्रताप और राजसिंहकी जन्मभूमि, स्वाधीनताका मुख्य स्थल, राजस्थान, वीरानसा हो गया। इन अनर्थोंके साथ साथ चूंडावतों और शक्तावतोंका बैर दिन पर दिन बढ़ता गया। कहा जा चुका है कि चूंडावत राणा जीके बड़े प्रिय थे। उनके सरदारको मन्त्रित्व दिया गया था; पर उसने अहङ्कारमें पड़कर इस उच्च पदका अपमान किया। चित्तौड़ और उदयपुरके बीचकी राणा-की सब जमीन लेकर उसने सिन्धी सैनिकोंमें बांट दी। कदाचित् राणाजीसे उस-को बिलकुल सहानुभूति नहीं थी। क्योंकि उस समय राणाजी तो धनके लिये अत्यन्त कष्ट उठा रहे थे और वह अपने साथियोंमें अनेक तरहके आनन्दमें खूब धन उड़ा रहा था; यहांतक कि राणा भीमको अपने विवाहके लिये रुपये कर्ज लेने पड़े और इस अविचारीने अपनी कन्याके विवाहमें लगभग दस लाख रुपये लापरवाईके साथ खर्च कर डाले। चूंडावत-सरदारकी ये बातें देखकर राजमाता उससे बहुत नाराज हुईं। चूंडावतोंसे शासनकार्य लेकर उन्होंने शक्तावतोंको दिया और भिण्डीर तथा लवाके सामन्तोंका बड़ा सम्मान किया और अधिकार दिया। शक्तावतोंने यह क्षमता तो पाई पर उनमें इतना सैनिक बल नहीं था कि शत्रुओं को वे पराजित कर सकते; अतएव सहायक ढूंढ़ने लगे। कोटाके जालिमसिंहसे उन्होंने सहायता मांगी। जालिमसिंहको चूंडावतोंसे बड़ा द्वेष था और इधर शक्ता-वतोंसे बड़ा नजदीकी सम्बन्ध; क्योंकि इनके साथ उनका वैवाहिक सम्बन्ध था। इसलिये जब शक्तावतोंने इनसे सहायता मांगी तो इन्होंने उनका साथ दिया और अपने महाराष्ट्रीय मित्र लालजी बल्लालके सहित दस हजार सैनिक लिये हुए उनसे मिले। अब शक्तावतोंने दो बातें सोचीं, - एक तो विद्रोही चूंडावतोंको दबाना और दूसरी नकली राणा रत्नसिंहको कमलमीरसे भगाना। चूंडावत लोग सिन्धी सैनिकोंके साथ चित्तौड़के पुराने किलेमें बैठे बैठे राणाजी पर खूब कुचक्र चला रहे थे। शक्तावत लोग पहले इन्हींको दबानेका निश्चय करके इस कार्यके लिये चले।

जिस समय मेवाड़में यह घटना हो रही थी उस समय मारवाड़ और जयपुर की एकत्र सेनाने वीर माधाजी सिन्धियाको नीचा दिखाया। लालसरायके मैदान

में राजपूत लोग मराठों पर विजयी हुए। जबर्दस्त माधाजीके जहरीले दांत टूटे और सुयोग पाकर राजपूत अपनी खोई हुई जमीनोंको मराठोंके ग्राससे पुनः निकालने लगे।

विजयी राठौड़ों और कछवाहोंकी देखादेखी सोसोदीय नरेशने भी सिन्धियाके हाथोंमें चले गये हुए राज्योंका उद्धार करना आरम्भ किया। इस अवसर पर फिर कुछ समयके लिये गिह्लोट वीरोंकी प्राचीन वीरता प्रकट हुई। राणाके दीवान मालदास मेहता और सहकारी दीवान मौजीराम दोनों बड़े साहसी और बुद्धिमान् थे। आवश्यकता समझकर इन्होंने पहले नीमबहेड़ा और फिर उसके पासके मराठे किलोंपर अधिकार किया। मराठे हारनेसे बहुत घबराये और जीद नामक स्थानमें उन्होंने अपनी सेनाको जो तितर बितर हो गई थी एकत्रित किया। पर उनका सब उद्योग व्यर्थ हो गया। जीदका शासनकर्त्ता शिवाजी नाना हार गया, पर अपने कुटुम्बियों और चीजोंको वह ले जा सका। राजपूतोंने दुर्गका घेरा करके उसे शीघ्र उसके बाहर कर दिया। इधर बेगूके सरदार मेघसिंहके * पुत्रोंने एकत्रित होकर मराठोंको बेगू शिङ्गोली तथा और कई जिलोंसे भगाया। अवसर पाकर चूंडावतोंने भी अपनी रामपुर नाम्नी जागीर ले ली। इस प्रकार थोड़े दिनोंमें मेवाड़के खोये हुए राज्य फिर मिले, मराठोंका जोर दबा, सोसोदियोंका जयगान होने लगा और वीरप्रसविनी मेवाड़भूमि एकबार फिर प्रसन्न दिखाई देने लगी।

राजपूतोंको अपनी जीतकी बड़ी प्रसन्नता थी। वे मेवाड़ और मारवाड़के बीचकी रिरकिया नाम्नी नदीके किनारे चुर्ढू नामक स्थानमें एकत्रित होकर अपनी सेना मेवाड़की दूसरे स्थानोंमें ले जानेका विचार करने लगे। पर नासमझोके कारण उनका सब उद्योग व्यर्थ हो गया। जीतके आनन्दमें उन्होंने अपनी अवस्था और न्याय अन्याय पर विचार नहीं किया, किन्तु जिधर जीमें आया उधर ही तलवार चलानेको वे तैयार हो गये। जिन स्थानोंको मराठोंने सन्धिकी शर्तोंको तोड़कर अन्यायसे ले लिया था यदि उन्हीं स्थानोंको वे फिर ले लेनेकी चेष्टा करते

* मेघसिंह बेगूका अधिकारी था। वह चूंडावत था। उसके वंशधर मेघावत कहे जाते हैं। वह बड़ा काला था, अतएव लोग उसे "काला मेघ" कहा करते थे।

तो अपने उद्योगमें उनको अवश्य सफलता होती, पर उन्होंने समझा कि अब मराठे एकबार हार खा गये तो फिर सिर नहीं उठा सकते। इसी विश्वास पर मराठोंने न्यायसे जो स्थान लिये थे उनको भी छीन लेनेका राजपूत लोग यत्न करने लगे। परन्तु वीरनारी अहल्याबाईने उनकी सब चेष्टा वृथा कर दी। अहल्याबाई होलकरकी रानी थी। राजपूतोंको नीमबहेड़ा पर हाथ बढ़ाते देखकर उसे बड़ा क्रोध आया। राजपूतोंको दबानेके लिये उसने सिन्धियाकी सेनामें अपनी सेना मिलाई। उसकी आज्ञा पाकर तुलाजी सिन्धिया और श्रीभाई पांच हजार सवारोंको साथ लिये हुए शिवा नानाकी सहायताके लिये मुन्दोसरकी ओर बढ़े। शिवा नाना उस समय वहीं था और राजपूतोंके सैनिकोंको जो उस स्थानका घेरा किये हुए थे खूब मार काट रहा था। ऐसे समयमें मराठोंकी यह नई सेना वहां जा पहुंची और राणाजीकी सेनापर इसने चुपचाप छिपे हुए आक्रमण कर दिया। संवत् १८४४ विक्रमाब्दके माघ महीनेकी चतुर्थी मङ्गलवारको दोनों पक्षोंमें लड़ाई हुई। राजपूत असावधान थे, इसलिये मराठोंका वे अच्छी तरह मुकाबला नहीं कर सके;—आखिर हार गये। राणाजीका मन्त्री अपनी ओरके बहुतसे लोगोंके साथ मारा गया और कानोड़ तथा सादरीके सरदार बहुत घायल हुए। सादरीके नरेशको इतना गहरा जखम लगा कि वह लड़ाईके मैदानसे निकलकर न जा सका; शत्रुओंने उसे पकड़कर कैद कर लिया †। माधाजी सिन्धियाके हार जानेसे राजपूतोंने जो स्थान ले लिये थे उनमेंसे एक जौदको छोड़ बाकी सब फिर मराठोंके अधिकारमें चले गये। वीर दीपचन्दके उद्योगसे जौद बच गया। दीपचन्दने एक महीने तक बड़ी वीरतासे लड़कर जौदको बचाया और फिर अपनी तोपें बन्दूकें और सेना लिये हुए शत्रुओंके बीचसे वह मण्डलगढ़ चला गया। इस प्रकार अभागे राजपूतोंका दुःख दूर होकर भी नहीं हुआ!

इस भीषण झगड़ेमें चूंडावतोंको छोड़ मेवाड़के दूसरे सब सरदार और सामन्त शामिल हुए थे; इससे चूंडावतोंका मनमुटाव स्पष्ट मालूम होता है। वे धीरे धीरे इतने उपद्रवी हो गये कि राजमाता और राणाके नये मन्त्री सोमाजीको

† यह दो वर्षों तक कैद रहा। इसके बाद अपनी जागीरमेंसे चार अच्छे नगर देकर छुटकारा पाया।

राजकुमारका स्वार्थ बचानेके लिये उनके साथ खूब झगड़ा करना पड़ा; पर फिर भी चूंडावत नहीं दबे। आखिर लाचार होकर उनको शान्त होना और रामप्यारीको मध्यस्थ बनाकर सालुम्ब्रासरदारके पास भेजना पड़ा। सालुम्ब्रासरदार शान्त हुए और राजकुमारके आगे अपना दोष स्वीकार करनेके लिये वे उदयपुर आये। उदयपुर आकर उन्होंने धोखा देनेके लिये कहा—"मैंने विचार किया है कि मन्त्री सोमाजीके साथ साथ काम करूं।" परन्तु उनका असल मतलब तो यह था कि किसी कौशलसे सोमाजीको हटाकर अपना मतलब साधें। सोमाजी बड़ा बुद्धिमान् पुरुष था;—खासकर वह सालुम्ब्रा-सरदारके रास्तेमें कांटेके तुल्य था। इस समय उसको मारकर अपना कण्टक दूर करनेके लिये ही सालुम्ब्रा-सरदारने यह प्रस्ताव किया था। एक दिन सोमाजी दरबारमें बैठा था, इतनेमें कोरावरके अर्जुनसिंह और भदेसरके सरदारसिंह वहां गये। सरदारसिंहने कड़ाईके साथ पूछा—"आपने मेरी जागीर क्यों ले ली?" और यह वाक्य समाप्त होते न होतेही उसने पैनी छुरी मन्त्रीकी छातीमें घुसेड़ दी! इस भयानक हत्याके कारण राज्यमें बड़ी गड़बड़ फैली। राजकर्म्मचारियोंके जीमें चूंडावतोंकी ओरसे बड़ा डर समा गया। उस समय राणाजी "सुहेलिया बारी" (अप्सरा-वाटिका) में बेदनोरके जैतसिंह तथा अन्यान्य सरदारोंके साथ मौज कर रहे थे। सोमाजीके दोनों भाई * "बचाइये बचाइये" चिल्लाते हुए वहां पहुँचे। दुष्ट अर्जुनसिंह भी उनके पीछे दौड़ाता हुआ वहां गया। उसका दाहिना हाथ उस समय भी सोमाजीके खूनमें रँगा हुआ था। उसका यह दुस्साहस देखकर सब घबराये; पर कोई कुछ कह न सका। केवल राणाजीने उसे विश्वासघातक कहकर कहा कि यहांसे चला जा। इसके बाद इस भयानक काण्डके कर्त्ता लोग अपने सेनापति सालुम्ब्रा-सरदारके सहित चित्तौड़ नगरको लौट गये। शिवदास और सतीदास दोनोंको उनके मृत भाई सोमाजीका पद सुपुर्द किया गया। ये शक्तावतोंकी सहायतासे विद्रोही चूंडावतोंसे बहुत बार लड़े। पर जितनी बार लड़े सबमें हारे;

* शिवदास और सतीदासके साथ उनके चचाका लड़का जयचन्द था। इन्होंने भाईकी हत्या करनेवालोंको मारकर बदला लिया था; पर इस बदला लेनेमें इनको भी अपने जीवनसे हाथ धोना पड़ा।

केवल एकबार भकोलाकी लड़ाईमें इनकी जीत हुई। इस लड़ाईमें कोरावरके अर्जुनसिंह चूंडावतोंकी ओर सेनापति थे। पर इसके कुछ समय बाद खोरीदाके मैदानमें शक्तावत फिर हारे। इस भीषण झगड़ेके समय राज्यमें ऐसी गड़बड़ पैदा हुई कि लोगोंको बड़ा भय होने लगा। मेवाड़में जगह जगह अराजकताके लक्षण दिखाई देने लगे। जिसकी जीत हुई वही प्रजाओंके धन प्राणका नाश करने लगा। बेचारे कृषकोंने जीजानसे परिश्रम करके जो अनाज पैदा किया था उसका उपयोग वे न कर सके; सुनारों लुहारों और चमड़े आदिके कारीगरोंने अपनी बुद्धि और शक्तिसे जो चीजें तैयार की थीं उनका फल उनको नहीं मिला; दुष्ट लुटेरे उन चीजोंको लूट लूटकर ले जाने लगे। व्यापारियोंकी व्यापारिक वस्तुएँ भी लुटने लगीं। पहले समयोंमें जिस मेवाड़में चोरीका केवल नाम ही सुन पड़ता था—वास्तवमें चोरी नहीं होती थी—आज चूंडावतोंके अत्याचारके कारण उसी मेवाड़के घर घर चोरी होने लगी। धन सम्पत्तिकी कौन कहे, प्रजाओंके जीवन और मान मर्यादाका भी नाश होने लगा। अतएव सब विवश हो अपना अपना घर छोड़कर दूसरे स्थानोंको जाने लगे। इस अनर्थ करनेवाले लुटेरेपन और अराजकताके कारण कुछ वर्षों में मेवाड़की प्रजा आधी हो गई। जमींदारों की जमीनों, कृषकोंके हल आदिक, बुनाईका काम करनेवालोंके औजारों, सौदागरोंकी व्यापारिक चीजों—इत्यादि सबका नाश हुआ। जिन शोभामय स्थानोंमें लोगोंका हँसना खेलना नाचना गाना प्रसन्न होना सुन पड़ता था, वे अब बिलकुल खाली हो गये;—जङ्गली फाड़खानेवाले जन्तु जङ्गलोंसे आ आकर वहां बस गये।

मेवाड़के इस सार्वजनिक विप्लवके समय राजा प्रजा—धनी निर्धन—किसीमें कुछ भेद न रहा। जिसमें काफी बल था, जोर था, वही अपना और अपने कुटुम्बका बचाव कर सका। "जबर्दस्तका ठेंगा सिर पर" या "जेहिकी लाठी वहिकी भैंस" की कहावत चरितार्थ हुई। जो कमजोर थे उनको लुटेरोंके हाथों अधिक कष्ट उठाना पड़ा। अतएव राज्यकी अवस्था अत्यन्त दीन हीन हो गई। राणाकी अवस्था भी बहुत खराब हो गई। कहां तो इस बातकी आवश्यकता थी कि दुःखमें पड़ी हुई आश्रयहीन प्रजाको वे आश्रय देते, कहां उनको अपनेही लिये आश्रय ढूंढ़नेकी चिन्ता लग गई। अतएव प्रजासे उनका जो सम्बन्ध था वह

टूट गया और सबको अपने बचावके लिये अपनी जानकी बाजी लगाकर अपनी अपनी शक्तिका प्रयोग करना पड़ा। राणाजीकी अयोग्यताके कारण राज्यमें और भी कई अनर्थ खड़े हो गये। जिन किसानोंकी इच्छा नहीं थी कि अपनी जन्म-भूमि छोड़कर दूसरी जगह जायँ, उन्होंने अपनी रक्षाके लिये किसी योद्धाकी शरण ली और बदलेमें अपने रक्षकको कुछ द्रव्य देना स्वीकार किया। ज्यों ज्यों लोगोंको अपने बचावका अधिकाधिक ध्यान होता गया त्यों त्यों रक्षकोंकी आवश्यकता बढ़ती गई। इसके सिवा जो ही राजपूत घोड़ेकी सवारी करना और तलवार चलाना जानता था वही एक वीर बन गया और लोग उससे सहायता मांगने लगे। ये सवार अनेक उपायोंसे रुपये एकत्रित करने लगे। किसानोंसे अपना नियत रुपया लेनेके अतिरिक्त वे व्यापारियोंको लूटते, या उनसे भी कर लेते। उनकी पिछली लालसा धीरे धीरे इतनी बढ़ गई कि बिना उनका कर दिये किसी व्यापारीको छुटकारा न मिलता; कोई व्यापारी उनको कर दिये बिना व्यापारका माल लेकर कहीं आ जा न सकता। इस प्रकार कर लेना क्रमशः इन राजपूतोंकी वृत्ति हो गई। यहांतक कि यह वाहियात प्रथा बन्द हो जानेके बाद भी बहुत दिनों तक ये यह वृत्ति मांगते और लेते रहे। इस भीषण भीतरी विप्लवके कारण राज्यकी अवस्था खराब हो गई; और फिर इसके ऊपर जब बारम्बार मराठोंका आक्रमण होने लगा तब अवश्यही पाठकगण समझ सकते हैं कि मेवाड़राज्यकी दूनी दुदशा हुई होगी।

चूंडावतोंके विद्रोहके कारण राज्यमें इस प्रकारका अनर्थ होते देखकर आखिर राणाजी और उनके मन्त्रियोंने विद्रोहियोंको दूर करनेके अभिप्रायसे सिन्धियासे सहायता मांगनेका निश्चय किया। जिस सिन्धियाने नकली नरेश रत्नसिंहकी सहायता करनेके समय आकर मेवाड़का आधा खून चूस लिया था आज परमेश्वरकी इच्छासे अभागे राणाको उसी सिन्धियासे सहायता मांगनी पड़ी! वे बिलकुल कमजोर और अकर्मण्य थे, नहीं तो जो व्यक्ति एकबार देशको बहुत कुछ हानि पहुँचा चुका था उसे फिर क्यों बुलाते? कहा जाता है कि उनको सिन्धियाके बुलानेकी सलाह जालिमसिंहने दी थी। सिन्धिया उस समय अजमेरके पास पुष्कर तीर्थमें पड़ाव डाले विश्राम कर रहा था *। लालसएटके मैदानमें पराजित

* संवत् १८४७ (सन् १७९१ ई०)।

होनेपर उसने डीबाइन नामक प्रसिद्ध फरासीसी वीरको अपनी सेनाके सुधारने का काम सौंपा था। इस शस्त्रनिपुण युरोपियन वीरकी उत्तम शिक्षासे महाराष्ट्रीय सेना फिर पहलेकी तरह बलवती हो गई। फिर इस सेनाकी तेजस्विता मेरता और पाटणके मैदानोंमें दिखाई दी। राठौड़ लोग बड़ी बहादुरीसे लड़े, कटे और मरे; परन्तु फिर भी इस सेनाके मुकाबलेमें उनकी हार हुई। उनके हार जानेसे राजस्थानमें सिन्धियाकी खोई हुई प्रतिष्ठा फिर आ विराजी; उसका गौरव फिर प्रकट हुआ। राणाजीकी आज्ञा पाकर मेवाड़के प्रधान प्रधान सरदार उसके पास गये और उससे अपना मतलब कहा। जालिमसिंहके द्वारा राणाजीकी इच्छा सुनकर सिन्धिया तुरन्त जैसा राणाजीने कहा था वैसा करनेको राजी हो गया। इस अवसर पर राजस्थानकी राजनीतिक भूमिमें जो बड़े बड़े लोग प्रकट हुए उन्होंने अपने वीराचरणसे राजपूतानेके इतिहासमें एक नया युग पैदा कर दिया। आवश्यकता समझ कर उनके विषयमें कुछ बाते हम यहां लिखते है †।

जालिमसिंह इससे पहले कोटाके प्रतिनिधि थे। ऐसे ऊँचे पद पर रहकर चारों ओरके बैरियों पर दबाव रखना यद्यपि मामूली काम नहीं है, तौभी इस कार्यको वे बहुत सामान्य समझते थे। उनके हृदयमें एक बहुत बड़ी अभिलाषा धीरे धीरे भीतरही भीतर फैलती जाती थी। यदि वह अभिलाषा पूरी हो जाती तो कोटा राज्यका प्रतिनिधित्व उसके आगे कोई चीज नहीं था। वह अभिलाषा यह थी,—मेवाड़राज्य पर पूरा पूरा अधिकार प्राप्त करना। जालिमसिंह जैसे राजनीतिकुशल थे वैसेही उनमें यह भी बड़ा भारी गुण था कि मनुष्यके हृदयका सूक्ष्मसे सूक्ष्म भाव भी वे अपनी बुद्धिमानीसे निरख लेते थे। इस गुणके बलसे उन्होंने समझ रखा था कि राणाजी किसी प्रकार उनके कार्यमें बाधा नहीं डाल सकते। जालिमसिंहको निश्चय था कि जयपुर और मारवाड़ दोनोंके राजे मिलकर भी उनको हरा नहीं सकते। जयपुरके राजाको तो डरपोक और स्त्री कहकर वे उनसे घृणा करते थे; क्योंकि अकेली कोटाकी सेना लेकर ही उन्होंने उनको पराजित कर दिया था। इधर मारवाड़के सामन्त बहुत मानते थे, इससे जालिम-

† राणा भीमसिंह और जालिमसिंह आदि जिन लोगोंने ये कार्य किये थे, टाड साहबको उन्हींसे यह हाल मालूम हुआ था।

सिंहको निश्चय था कि.वे मेरे विरुद्ध उंगली भी नहीं उठावेंगे। राजनीतिविशारद मनस्तत्त्वज्ञ जालिमसिंहको उच्च आशाके पूरे होनेके सब लक्षण वर्त्तमान थे, पर केवल भाग्यमें न होनेके कारण उनकी इच्छा पूरी न होने पाई । यदि उनकी इच्छा पूरी हो जाती, यदि वे मेवाड़का राज्य पा लेते, तो भारतके भाग्याकाशमें स्वाधीनतारूपी सूर्य फिर दिखाई देता। पर परमेश्वरकी ऐसी इच्छा नहीं थी; विधाताने भारतके भाग्यमें यह बात नहीं लिखी थी। भारतको तो पराधीनता बदी थी; तभी तो जालिमसिंहका मतलब नहीं सिद्ध हुआ । जो कठोर काम करनेके लिये उन्होंने कमर कसी थी, उससे उनके पांव जो उखड़े तो फिर न जमे। अतएव भारतके सर्वश्रेष्ठ शासक न होकर वे केवल राजपूतानेके 'नेस्टर' के * समान रहे।

राजनीतिज्ञ चतुर जालिमसिंहके हृदयमें जो आशा धीरे धीरे बढ़ रही थी उसकी परितृप्तिका उनको पूरा मौका मिला। राणाजीने अपना बल दृढ़ करनेका कार्य उनको सौंपा। इस महान् कार्यके साधनमें वे अपना मतलब सिद्ध करनेके लिये भी उपाय करने लगे । यदि उनके उपाय सफल हो जाते, यदि वे अपना मतलब पूरी तरह सिद्ध कर सकते, तो भारतवर्षका बड़ा उपकार होता। जो महान् कार्य राणाजीने उनको सौंपा था उसके पूरा करनेमें बहुत द्रव्यकी आवश्यकता थी। इसके अतिरिक्त विद्रोहियोंसे चित्तौड़के लेनेमें भी रुपया खर्च होने की सम्भावना थी। रुपये बिना कोई काम नहीं हो सकता था; पर रुपया आता कहां से ? जालिमसिंहके मनमें इसी बातका विचार पैदा हुआ। आखिर उन्होंने निश्चय किया कि जब विद्रोही या बलवाई लोग ही मेवाड़के इतने खर्चके मुख्य कारण हैं, तब उन्हींसे यह रुपया लेना चाहिये। राजपरिवारके सम्बन्धकी जो जमीन चूंडावतोंके अधिकारमें थी वह, तथा ६४ लाख रुपये, उन्होंने उनसे लेनेका विचार किया । इस ६४ लाखकी रकमको ५ हिस्सोंमें बांटकर उनमेंसे

* नेस्टर प्राचीन ग्रीसका एक प्रसिद्ध राजा था। प्रसिद्ध ईलियड ग्रन्थमें उसके अनेक गुण वर्णित हैं। वह बड़ा बुद्धिमान्, राजनीतिकुशल और युद्धविशारद राजा था । ग्रीसके पुराणके अनुसार बहुत दिनोंतक जीवित रहकर वह तीन पीढ़ियोंकी उत्पत्ति और विनाश देखता रहा।

२ हिस्से वे सिन्धियाको देनेको थे और बाकीसे राणाकी ज़रूरत पूरी की जानेको थी। इस प्रकारकी बातें विचार और एक बलवान् सेनादल लेकर जालिमसिंहने चित्तौड़की ओर यात्रा की। अम्बाजी इङ्गलिया इस सेनादलका प्रधान सरदार नियत किया गया था। इधर सिन्धिया मारवाड़के राणासे प्रतिज्ञानुसार रुपये लेनेके लिये दलबलके सहित चला। जालिमसिंह और अम्बाजी सेनाके सहित चित्तौड़की ओर बढ़ने लगे। कितने ही हरे भरे खेत उनके उपद्रवी सैनिकोंके पांवों तले कुचलकर नष्ट भ्रष्ट हो गये! कितने छोटे बड़े सुन्दर गांवोंकी दुर्द्दशा हुई। खासकर जिन गांवों या नगरोंपर जालिमसिंहकी कोपदृष्टि पड़ी उनकी दुर्दशाका कोई ठिकाना न रहा। जालिमसिंहने वहांके सरदार, नायक या पटवारीसे मनमाने रुपये लिये। धीरजसिंह नामक एक व्यक्ति चूंडावत-सरदार भीमसिंहका मुख्य सलाहकार था। वह एक बुद्धिमान् और साहसी राजपूत था। इस समय वह हमीरगढ़का शासनकर्त्ता था। उसे विद्रोहियोंमें मिला हुआ समझकर जालिमसिंहने जाकर उसके हमीरगढ़को घेर लिया। छः सप्ताहोंतक खूब लड़ाई हुई। मालूम नहीं होता था कि किस ओरकी हार होगी और किस ओरकी जीत। छः सप्ताहोंके बाद, परमेश्वरकी इच्छासे, धीरजसिंहको हारके लक्षण देख पड़ने लगे। जालिमकी तोपोंके बाढ़से हमीरगढ़के समस्त कूपोंके सोतोंके मुंह बन्द हो गये, या टूट गये। इससे, जब पानीकी कमीसे नगर-निवासियोंको अत्यन्त कष्ट होने लगा तब लाचार होकर उनको किलेका द्वार खोल देना पड़ा। जालिमसिंहने धीरजसिंहसे हमीरगढ़ ले लिया। इसी तरह और भी दो एक स्थानोंपर अधिकार करता हुआ राजकीय सेनादल धीरे धीरे चित्तौड़की तरफ बढ़ता गया। रास्तेमें बसी नामक स्थानमें भी इस दलको कुछ समयतक रुकना पड़ा। बसी चूंडावतोंकी जागीर थी। पर चतुर जालिमसिंहने आखिर इस स्थानपर भी अधिकार कर लिया और फिर शीघ्र ही चित्तौड़के समीप सब पहुंच गये। चित्तौड़की ऊँची ऊँची दीवारोंके नीचे पहुंचकर विश्राम करनेके कुछही समयके बाद सहायता करनेके लिये सिन्धियाकी विशाल सेना भी आ पहुंची।

बड़ा पद पाकर मनुष्य प्रायः वृथा घमण्ड करने लगता है। जिन राणाजीके

एक बार दर्शन हो जानेसे खुद पेशवा अपनेको धन्य मानते थे, आज माधाजी सिन्धियाने उन्हींसे चित्तौड़के सामने मिलनेकी इच्छा प्रकाश की । सिन्धियाकी इस अन्याय अभिलाषासे जालिमसिंह मनमें कुछ नाराज हुए; पर करते क्या? आखिर वे अहङ्कारी माधाजीकी उक्त अभिलाषा पूरी करनेके लिये उदयपुर गये। भाग्यचक्रका ऐसा ही परिवर्त्तन होता है, मान गौरव ऐसा ही अनित्य और नाशवन्त होता है, कि जिन राणाजीके पूर्वजोंको देखनेके लिये तरह तरहके उपहार लेकर भारतके भिन्न भिन्न प्रान्तोंके नामी नामी और बड़े बड़े राजा सीसोदियोंके दरबारमें जाते थे, आज उनको एक मामूली महाराष्ट्रसे मिलनेके लिये राजसिंहासन छोड़कर स्वयं जाना पड़ा! राजधानीसे कुछ दूरपर 'बाघ-पर्वत' नामक पहाड़ी स्थानमें राणाजी और सिन्धियाकी मुलाकात हुई। सिन्धिया इज्जतके साथ राणाजीसे पेश आया और उनको घेरा डालनेवाली सेनाके पास ले गया। बहुत थोड़े समयमें इतनी काररवाई समाप्त हुई। पर इस थोड़े समयमें ही जो बड़ी बात हो गई उससे बुद्धिमान् जालिमसिंहकी इच्छाके पूर्ण होनेमें एकदम रुकावट पड़ गई । जब सिन्धिया और जालिमसिंह राणाजीसे मुलाकात करनेके लिये चित्तौड़से चले गये, तब अकेला अम्बाजी इङ्गलिया वहां रह गया। जालिमसिंहके हृदयमें जो नई नई आशाएँ धीरे धीरे बढ़ रही थीं उनका हाल अम्बाजीको मालूम था। यद्यपि जालिमसिंहने अपने मनकी बातें कभी किसीके आगे प्रकाशित नहीं कीं, पर वे बातें चतुर महाराष्ट्रीय वीर अम्बाजीसे छिपी न रह सकीं। जालिमने उन बातोंको जितना छिपाया, अम्बाजीका सन्देह उतना ही बढ़ा; वह उतना ही उन बातोंको समझता गया । अम्बाजीने मालूम कर लिया कि जालिमसिंह एक बहुत बड़ी इच्छा पूरी करनेकी चेष्टा कर रहे हैं। उसने मनमें सोचा कि यदि जालिमसिंहका यह महान् अभिप्राय सिद्ध हो गया, तो मेरी सब आशाएँ व्यर्थ हो जावेंगी,—मुझे जालिमके अधीन होकर एक सहकारी सैनिकका काम करना पड़ेगा। इस प्रकारका विचार मनमें करके वह जालिमसिंहका सब अभिप्राय व्यर्थ कर देनेका मौका ढूंढ़ने लगा। पर इतने दिनोंतक उसे कोई सुयोग नहीं मिला था; आज जालिमसिंहको दूसरे स्थानमें गया हुआ देखकर उसने उनको दबानेके विषयमें विद्रोही चूंडावत सरदारसे

मिलकर बातें कीं। जालिमसिंह अम्बाजीको अपना मित्र समझते थे;—यद्यपि अपने मनकी बातें उन्होंनें अम्बाजीके आगे कभी प्रकट नहीं कीं, पर तौभी अम्बाजीका वे विश्वास करते थे। वे समझते थे कि अम्बाजी उनका कोई नुकसान नहीं करेगा। इस विश्वासकी ही कारण उनका कौशल-जाल टूट गया, उनकी कारवाई नष्ट हो गई। यदि जालिमसिंह धोखेकी चालसे अपने राजनीतिक शत्रुका मुकाबला करते, तो अम्बाजीकी चतुराई धूलमें मिल जाती और अपनी स्वाभाविक तीक्ष्ण बुद्धिसे वे अपने सौभाग्यका मैदान साफ कर लेते। जब उनका अध:पतन निश्चित हो गया, तब भी यदि वे चाहते तो किसी तरह उनका पुनरुदय हो जाता; पर कोई अयोग्य उपाय न करके अपना बचाव करनेकी अपेक्षा उन्होंने अपने अध:पतनको ही अच्छा समझा। इसलिये उनके सब विचार व्यर्थ हो गये। जिन विचारोंके पूर्ण होनेपर वे सुविशाल भारतसाम्राज्यके प्रधान राजा होकर करोड़ों भारतवासियोंके भाग्यचक्रको अपनी उँगलियोंपर नचा सकते, वे विचार पूरे नहीं हुए और जालिमसिंह केवल थोड़ेसे राजपूतोंकी सरदारी पा सके।

सालुम्ब्रासरदार भीमसिंह और अम्बाजीने आपसमें विचार करके आखिर निश्चय किया कि, "यदि जालिमसिंहको काम छोड़कर रुखसत होनेकी आज्ञा दी जाय तो मैं चित्तौड़ छोड़ दूंगा और २० लाख रुपये देकर राणाजीके आगे सिर झुकाऊंगा। चूंडावतसरदारके इस प्रस्तावपर सब राजी हुए। यह प्रस्ताव सुनकर सबने समझा कि जालिमसिंहके साथ शत्रुता होनेके कारण यह प्रस्ताव किया गया। पर असल बात दूसरी थी। अम्बाजीने अपना मतलब साधनेके लिये ऐसा ही कहनेको सिखलाया था। सिन्धिया भी पूना जानेको उत्सुक था। केवल विद्रोहियोंका कोई फैसला न होनेके कारण वह इतने दिनोंतक रुका हुआ था। इस समय यह प्रस्ताव सुनकर उसे अच्छा मौका मिला और उसने खुशीके साथ इस बातपर अपनी सम्मति दी।

अबतक जालिमसिंह अम्बाजीको अपना एक मित्र समझते आये थे। यह मित्रभाव उनके हृदयकी सफाई और कृतज्ञताका परिचय देता था। उज्जैनकी लड़ाईमें महाराष्ट्रीय वीर त्र्यम्बकजीने उनको प्राण और स्वाधीनता दान करके उनके साथ जो उपकार किया था, यद्यपि उसका पूरा बदला जालिमसिंह नहीं चुका सके,

तब उस उपकारके लिये वे बड़े कृतज्ञ थे। उस कृतज्ञ हृदयके उत्साहसे वे अम्बाजी को अपना मित्र या भाई मानते आये थे । जहांतक दोनोंके स्वार्थमें खैंचातान नहीं हुई थी वहांतक दोनों एक दूसरेके मित्र थे; पर आज दोनोंके स्वार्थमें खूब रगड़ हो गई। यह रगड़ शीघ्र रुकनेवाली नहीं। इससे जो चिनगारी फूट निकलती वह अवश्यही किसी एकको भस्म कर डालती । खैर, राणाजीके साथ जालिमसिंहके चित्तौड़के पास पहुंचनेपर अम्बाजीने बनावटी दुःखके साथ कहा, "विद्रोही भीमसिंह अधीनता स्वीकार करनेको तैयार है, पर साथही वह कहता है कि यदि जालिम यहां रहेंगे तो हम किसी तरह राणाजीके वशमें न होंगे। इसलिये इस विषयमें आपलोग जो उचित समझें वह निश्चय करें।" इसके बाद यह विचारकर कि यह प्रस्ताव न माननेसे पीछे शायद कोई किसी तरहका सन्देह करे इसलिये जालिमसिंहने सबसे पहले ही कह दिया कि, यदि उन लोगोंका यह उज्र है, यदि वे मुझको रुकावट समझते हैं, तो मैं खुशीसे इस स्थानसे चला जाता हूं। विशेषकर मेरे यहां रहनेसे बहुत खर्च होनेकी भी सम्भावना है; इसलिये यदि राणाजीकी इच्छा हो तो मैं अभी कोटाको चला जाता हूं।" चतुर जालिमसिंह आज महाराष्ट्रोंकी चतुराईके जालमें फँस गये। उन्होंने समझा कि उनके मनकी बात कोई जान नहीं सका; पर अम्बाजीकी वारकी दृष्टि उसकी रग रगमें घुसी हुई थी यह उन्होंने सोचा ही नहीं ! जालिमसिंहके महान् चरित्रमें एक विशेष मसाला था। वह मसाला था घमण्ड। घमण्ड दूसरोंके लिये दोष है; पर जो हो, जालिमके चरित्रमें हम इसे गुण ही कहेंगे । इसने उनके हृदयको उच्च बना दिया था, उनके मान उनकी इज्जतको शत्रुओंसे बचाया था । मेरे जिस कठिन बातकी इच्छा थी यदि उनमें यह गुण न होता तो उस बातके कारण उनका बहुत अपमान होता। इस घमण्डने ही विश्वास—नाविककी तरह उनकी जीवननौकाको संसार तरङ्गकी असाध्य उलट पुलट और भँवरसे बचाया ।

जालिमसिंहकी लम्बी जिन्दगीमें सब गुणोंने उनका साथ छोड़ा, पर घमण्ड ने नहीं। यह जीवन भर उनके साथ रहा। चतुर अम्बाजी जालिमके स्वभावको भली भांति जानता था। वह जानता था कि जब जालिमसिंहके सामने सालुम्ब्रा सरदार यह प्रस्ताव उठावेंगे तो जालिमसिंह कभी उसमें अपनी असम्मति न

प्रकाश करेंगे। जालिमसिंहने जब वह उत्तर दिया जिसका जिक्र ऊपर किया गया है, तो अम्बाजीने मीठे दुमानी शब्दोंमें मुस्कुराते हुए कहा, "आपने मुझसे जो कुछ कहा वह बड़ा मजेदार किस्सा है; पर जो लोग अपनी नहीं जानते उनके आगे यदि यह बात कही जाय तो वह इसपर विश्वास कर लेगा।" यह मीठी दुमानी बात सुनकर गर्वित जालिमसिंहने अपनी कही हुई बातको और भी दृढ़ करनेके लिये कठोर कसम खाई। तब अम्बाजीने आश्चर्यके साथ पूछा, "तो क्या सचमुच आपको जानेकी इच्छा है?" "सचमुच" गम्भीर स्वरमें जवाब देकर जालिमसिंह स्थिर और अकम्पित भावसे खड़े रहे। उनके सिरका एक बाल भी नहीं हिला। चतुर अम्बाजो मन ही मन बहुत आनन्दित हुआ; पर वह आनन्दवेग हृदयमें ही छिपाकर बनावटी गम्भीरताके साथ बोला, "शीघ्र ही आपकी इच्छा पूर्ण होगी।" जालिमसिंहको और चिन्ता करनेका अवसर न देकर कूटनीतिज्ञ अम्बाजी घोड़े पर सवार होकर सिन्धियाके पड़ावकी तरफ चला गया।

चतुर जालिमसिंहने आज महाराष्ट्रीय अम्बाजीकी चतुराईके आगे धोखा खाया। अम्बाजीके चले जानेके बाद उनके मनमें निज विषयकी चिन्ता पैदा हुई जिससे वे एकदम अधीर हो गये। क्या करें, किस रास्तेसे आगे बढ़े, यह वे कुछ स्थिर न कर सके। जिस आशाको उन्होंने जन्म भर हृदयमें पाला था, उसका क्या हुआ? उस आशाके पूर्ण होनेसे पहलेही उसकी जड़ कट गई। यह क्या सामान्य दुःखकी बात थी? तौभी वे उस आशाको त्याग न सके। उन्होंने आशा की कि सिन्धिया कभी अम्बाजीका प्रस्ताव स्वीकार न करेगा; और यदि स्वीकार करेगा भी तो राणाजी इस बातका प्रतिवाद करेंगे। कारण यह कि उनको विश्वास था कि राणाजीपर उनका बड़ा प्रभाव है। सिन्धियाकी तरफसे उन्होंने जो आशा की थी उसका विशेष कारण है। सिन्धियाने छिपे तौरपर प्रतिज्ञा की थी कि मेवाड़के उद्धारके लिये मैं तुम्हें बहुतसी सेना सौंप जाऊंगा। इसके सिवा एक इससे भी दृढ़ यह कारण था कि जालिमने समझ रखा था कि मेरी सहायताके बिना सिन्धिया कभी राणाजीसे प्रतिज्ञाका वह रुपया * न वसूल कर सकेगा जो बाकी है। अम्बाजीने

* राणाजीने इस शर्तपर २० लाख रुपये देनेकी प्रतिज्ञा की थी कि चूण्डावत चित्तौड़से निकाल दिये जायं।

वे सब बातें पहले हीसे जानकर इनके अनुसार उचित प्रबन्ध कर रखा था। सिन्धियाने जब प्रतिज्ञाका रुपया मांगा, तब वह स्वयं सब रुपया देनेको तैयार हो गया *। सिन्धिया अम्बाजीकी बात टाल न सका। अम्बाजीसे उसे सब रुपये मिल गये और सब आवश्यक काम करके वह शीघ्र पूनाको चला गया।

उसी दिन राणा और जालिमसिंहसे उनका सब व्यवहार छूट गया। जाते समय सिन्धियाने अम्बाजीको अपना प्रतिनिधिस्वरूप छोड़ दिया और एक बड़ी सैना इसलिये एकत्र की कि उसकी सहायतासे अम्बाजी सब रुपये वसूल कर सकें। सिन्धियासे सब बातें ठीक करके चतुर अम्बाजी राणाके मन्त्री शिवदास और सतीदासके पास गया और उनसे अपने कार्य साधनमें सहायता देनेकी प्रतिज्ञा करा ली। कुछ घण्टोंमें यह काम ठीक करके धूर्त्त मराठा प्रतिनिधि जालिमसिंहके पास गया और कहने लगा 'आपकी आकांक्षा पूरी करनेमें सभी लोग सहमत हैं।' ज्योंही अम्बाजीके मुंहसे यह वाक्य निकले त्योंही राणाके चोबदारने आकर निवेदन किया कि विदाईका सब सामान ठीक है। जालिमसिंहकी सारी आशाओं पर पानी फिर गया पर वे इससे जरा भी न घबराये और उसी समय चित्तौड़से चले गये और जाकर राणाके चरणोंपर अपना सिर रख दिया। सिन्धिया दक्षिण को ओर चला गया और मेवाड़ अम्बाजीके आधीन हो गया।

अम्बाजो आठ वर्षतक मेवाड़में रहा। वहांका कर वसूल करके उसने इतना धन इकट्ठा कर लिया कि जिसकी सहायतासे वह अन्तमें भारतका अगुआ बन सका और फिरसे स्वाधीन हो गया। यद्यपि उसने वहांवालोंकी आयका आधा भाग करस्वरूप लेकर बारह लाख रुपये † एकत्रित कर लिये थे; पर फिर भी

---

* दक्षिणमें अम्बाजीका जो कुछ था उसके लिये नायबके नाम हुण्डी भेजकर उसने यह रुपये अदा किये थे।

† यह रुपये इस प्रकार संग्रह किये गये थे: —

सालुम्ब्रा	...	३ लाख	कुशीतल	...	१ लाख
देवगढ़	...	३ ,,	अमैत	...	२ ,,
गोसाईं सज्जनगिरि (उपर्युक्त दोनों दरबारोंके मन्त्री)		२ लाख	कोराबर	...	१ ,,
				जोड़ ...	१२ लाख

मेवाड़निवासियोंकी आंखोंके सामने वह आनन्द और सुखके दिन पुनः एक बार फिर गये जो इधर कुछ दिनोंसे उनके लिये स्वप्नके समान प्रतीत होने लगे थे। अम्बाजीको निम्नलिखित बातें परामर्श स्वरूप बतलाई गई थीं:—

(१) देशमें पूर्वभावसे राणाका आधिपत्य जमाना तथा विद्रोही राजाओं और सिन्धियाके हाथोंमें गई हुई भूमि लौटा लेना।

(२) कौमलमीरके अधिकारीको वहांसे निकाल देना।

(३) मारवाड़ नरेशके हाथसे गोदवार राज्य छीन लेना और

(४) राणा अरिसिंहके मार डालनेके सम्बन्धमें बून्दीवालोंसे जो झगड़ा हो रहा है उसे शान्त करना।

जो बीस लाख रुपये सिन्धियाको दिये थे उनमेंसे बारह लाख रुपये चूंडावतों से और आठ लाख शक्तावतोंसे वसूल किये गये थे। इसके अतिरिक्त राणाने प्रण किया कि जब अन्यान्य कार्य्य हो जायंगे तो अम्बाजीको सेनाके व्ययके सिवा आठ लाख रुपये और दिये जायंगे। दो वर्षके अन्दर ही अन्दर कौमलमीरसे रत्नसिंह निकाल दिया गया; जहाजपुर विद्रोही राणाके हाथोंसे छीन लिया और अन्यान्य सरदारोंके हाथसे राणाकी राजभूमि * निकल गई। अब राणाको प्रायः पचास लाख रुपयेकी हानि होने लगी। यद्यपि अबतक गोदवार जीता नहीं जा सका था, बून्दीके झगड़ेका कुछ अन्त न हुआ था और न वह रियासतें छुड़ाई गईं थीं जो मराठोंके पास रेहन रखी हुई थीं तथापि अम्बाजीको मेवाड़के सूबेदारकी पदवी मिल गई। उसने सन्धिके नियमोंका पालन न करके राणाके लाभका अधिक ध्यान रखा। राणाके मन्त्रियोंको भय हुआ कि कहीं उनकी भी वही दशा न हो जो उनके भाईकी हुई थी; इसलिये उन्होंने अपनी तथा राणाकी रक्षाका भार अम्बाजीपर सौंपा और उसको सेनाके लिये आठ लाख रुपये वार्षिककी जागीर अलग कर दी गई। पर उस समय देश ऐसा दरिद्र हो रहा था कि सम्बत् १८५१ में जब राणाकी बहनका विवाह जयपुरके राजकुमारसे होने लगा तो राणाको

* सिन्धियासे रायपुर और राजनगर, पुरावतोंसे गुरला और गाडरमाला सरदारसिंहसे हम्मीरगढ़ और सालुम्ब्रासे कूरज और कौखारितकी जागीरें पुनः राणाके राज्यमें मिला ली गईं।

मराठे सरदार अम्बाजीसे पांच लाख रुपये ऋण लेना पड़ा। इसके उपरान्त दूसरे वर्ष ही तीन घटनाएँ हुईं; एक तो राजमाताका देहान्त हो गया दूसरे राणा के घर एक राजकुमार उत्पन्न हुआ और तीसरे झीलकी बान्ध टूट गई जिससे नगर तथा वहांके निवासियोंका तृतीयांश नष्ट हो गया। साधारणतः लोग समझते थे कि इस उपद्रवका कारण गौरीका वह मेला * है जो राणाने स्थापित किया था, और जिसके कारण ग्रामदेवता रुष्ट हो गये।

जिस वर्ष सिन्धियाने अम्बाजीको हिन्दुस्थानमें अपने प्रतिनिधिस्वरूप नियत किया उसी वर्ष वह गणेशपन्थको मेवाड़में छोड़कर और उसे सब अधिकार देकर चला गया। गणेशपन्थने राणाके दो कर्म्मचारियों सवाई और शेरजी मेहता † की सहायतासे राजकार्य करना आरम्भ किया। पर इन लोगोंके कुप्रबन्धसे विवश होकर अम्बाजीने गणेशपन्थको निकाल दिया और उसके स्थानपर प्रसिद्ध रामचन्द्र को नियत किया। पर लोगोंने रामचन्द्रके आधीन रहना स्वीकार न किया जिससे देशमें और भी अशान्ति और अराजकता फैली। यदि उन बातोंका पूरा पूरा विवरण यहां दिया जाय जिसके कारण कि यह देश धीरे धीरे नष्ट हो गया तो पाठकोंको उसके पढ़नेसे अरुचि हो जायगी। उस समय लुटेरे मराठे जङ्गलोंमें रहते और फ्रेश राज्योंको लूटते थे। चूण्डावतोंने जिनमेंसे अधिकांशकी जागीरें जब्त कर ली गई थीं, सिन्धी लुटेरोंसे मिलकर भली भांति देशको लूटा। राणाने और कोई उपाय न देखकर उनकी जागीरोंपर धावा करनेकी आज्ञा दी। कोरा-बर उनके हाथोंसे छीन लिया गया और सालुम्ब्राके विरुद्ध सेनाएँ भेजी गईं; सिन्धी भाग गये और जाकर देवगढ़में छिपकर उन्होंने अपने प्राण बचाये। इस अवसर पर चूण्डावतोंने अम्बाजीसे मिलनेके अभिप्रायसे उनके पास अपना एक दूत भेजा; अम्बाजी उस समय दतियाको घेरे हुए था। अम्बाजीने कहा कि मैं दस लाख रुपये

* यह मेला भादोंमें लगता था। इसका पूरा विवरण आगे दिया जायगा।

†-टाड साहब कहते हैं कि सवाई इस समय (पुस्तक प्रकाशके समय) जवानसिंहकी जागीरका प्रबन्धकर्त्ता है; और जब मैं उदयपुर पहुंचा तो उस समय उसका भाई शेरजी मेहता वहांके मन्त्रिदलमें था।

लेकर मेवाड़से * अपने प्रतिनिधिको बुला लूंगा। फिर शिवदास और शक्तावतोंसे कोई सम्बन्ध नहीं रह जायगा और मैं चूण्डावतोंको सहायता दूंगा। सालुम्ब्रा सरदारकी पूर्व प्रतिष्ठा फिरसे स्थापित हुई और अग्रजी मेहताको † मन्त्रीके पदपर

* यह घटना सम्वत् १८५३ – सन् १७९७ की है।

† जिस समय टाड साहब उदयपुरमें पहुंचे थे उस समय उग्रजी मेहता वहांका दीवान था। वह लिखते हैं कि उस समय उस दरबारमें उसके समान और कोई दूसरा व्यक्ति न था। जबसे पांचोलीके वंशधर दीवानके पदसे अलग कर दिये गये तबसे फिर कभी मेवाड़की उन्नति न हुई। विहारीदासके अनेक वंशज मेरे आधीन थे। उनके सम्बन्धकी कुछ बातें यहां दी जाती हैं। जिस समय मेवाड़का राजकार्य विद्रोही सरदारोंके हाथमें आया उस समय पांचोली वंशके हाथसे जिसने पहले देशकी बहुत कुछ सेवाकी थी, वहां की दीवानीका काम निकल गया और मेहता डेपरा और धाभाईके हाथमें आया। पांचोलीके वंशधरोंके पाससे जो पत्रादि मिले हैं उनमेंसे कुछ तो तत्कालीन राणाके और कुछ दीवान उग्रजी मेहताके नामके हैं। इन पत्रोंसे उनके अचल स्वदेशाभिमान तथा उस समयकी देशकी स्थितिका अच्छा पता लगता है। सम्वत् १७५३ (सन् १७९७) में अमृतराव पांचोलीने देशको सङ्कटोंसे बचानेके लिये अनेक उपाय सोचे थे। उसने राणासे अनेक बार प्रार्थना करके उन्हें निश्चय करा दिया कि उनका यह समझना बिलकुल भूल है कि मेवाड़का राजकारसार भक्तावतों और चूण्डावतोंके हाथसे निकालकर विदेशी सरदारोंके हाथमें देनेसे उसमें कुछ सुधार होगा और मेवाड़की उन्नति होगी। अमृतरावने अपने पत्रमें लिखा था:—

"देशके विपदग्रस्त होनेके मुख्य कारण हैं मत्सर और पक्षाभिमान। पहले पहल तुर्कों (मोगलों) ने देशमें उन विपत्तियोंको फैलाया पर उस समय मेवाड़के राजकर्त्तागण, उनके मन्त्री तथा सरदारोंमें एकता थी। इस एकता होके कारण उस समय देश उस रोगसे मुक्त हो गया और उसका प्रसार अधिक नहीं हुआ। इसकी उपरान्त राणा जयसिंहके पुत्र उमरावसिंहने उनका नाश कर दिया। राणा उमरावसिंहने राज्यकी सारी गड़बड़ी मिटा दी, सब लोगोंको उनकी योग्यताके अनुसार हक तथा पदवियां दीं और सारे देशमें शान्ति स्थापित की। इसके उपरान्त

नियुक्त करके उन्होंने शक्तावतोंपर चढ़ाई की और उनकी जागीरसे दस लाख रुपये वसूल किये तथा होता और सैमरी नामक स्थान जब्त कर लिये गये।

रायपुरमें महाराणा संग्रामसिंहके आश्रयमें चूंडावत नामक एक नवीन पक्षकी उत्पत्ति हुई जिससे देशमें पुनः कुछ गड़बड़ी हुई। मन्त्री विहारीदासपर अनेक सङ्कट आने और उसके पुत्रके आत्महत्या करनेके उपरान्त देशमें इस रोगकी दिनों-दिन वृद्धि होने लगी। सरदार बाजीरावके आधिपत्यमें दक्षिणियोंने इस देशपर चढ़ाई की जयपुरके झगड़े * और राजमहलके पराजयके कारण बहुतसा धन व्यय हुआ और देशको अधिक विपद्ग्रस्त होना पड़ा इसमें जगत्सिंहका समय भी मिला लीजिये और उस समय धाभाइयों और पांचोलियोंमें जो शत्रुता हुई उससे स्वदेश और विदेशमें बहुत बदनामी हुई और देशके प्राचीन गौरवमें धब्बा लगा। उस समय प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको देशका प्रधान समझने लगा जिसका परिणाम यह हुआ कि राजाकी मर्यादा सर्व साधारणकी दृष्टिमें एकदम नष्ट हो गई। जगत्सिंहको अपने विद्रोही पुत्र प्रतापसिंहके हाथों बहुत कष्ट उठाना पड़ा और सोलङ्की तथा अन्य कई सरदार छलसे मारे गये। उस समयसे लेकर आजतक उदयपुरके सरदार राजभक्त न हुए और सदा राजासे विमुख ही रहे जिससे उनका विश्वास उठ गया। राणा प्रतापसिंहके अधिकारारूढ़ होनेपर महाराज नाथजीने स्पष्ट रूपसे अपने सारे विचार लोगोंपर प्रकट किये और यह आशा की कि इस अव्यवस्थाका कुछ सुधार हो जायगा। पर इस कामके लिये उन्हें तथा उनके वंशजोंको बहुत कष्ट फल भोगना पड़ा। उसी समयसे देशमें चारों ओर द्वेष, संशय और धूर्त्तताका प्रसार हुआ। इन सबोंमें वर्त्तमान मन्त्री अमरचन्द के अहङ्कारी कार्योंको मिला लीजिये और इसके अतिरिक्त पांचोलियोंकी आपसकी फूट और द्वेष आदिको भी देशके विपद्ग्रस्त होनेका कारण समझिये। इस फूट और द्वेषके कारण लोगोंमें मतभेद हुआ और देशमें दो दल उत्पन्न हुए जिससे सबोंकी मर्य्यादा नष्ट हुई। इतना होनेपर भी किसीकी आंखें न

* यह झगड़ा राणाके भतीजे माधवसिंहको जयपुरकी गद्दीपर बैठानेके लिये हुआ था।

माधोजी सिन्धियाकी मृत्यु, उनके भतीजे दौलतरावका राज्याभिषेक, उनके हाथोंसे शेणावी ब्राह्मण सरदारका खून, तथा सिन्धियाकी विधवा स्त्रीसे झगड़ा

खुलीं और किसीने आपसकी फूट और द्वेषको दूर करनेकी चेष्टा न की जिससे उस रोगमें और भी कुपथ्य हुआ। खुमानसिंह और शक्तावतोंमें हो था सम्बन्धी जो झगड़ा हुआ उससे भी इस देशके सङ्कटोंमें और वृद्धि हुई। महाराज नाथजीका छलसे वध और उसके कारण देवगढ़के यशवन्तसिंहका एकान्तवास, रघुदेव झालाका अपने अधिकारके लिये झगड़ना और दीवान अमरचन्दका सिन्धियोंकी खुशामद करना आदि बातें ऐसी हुईं जिनसे देश इस स्थितिको पहुंच गया। इसके अतिरिक्त राणाकी विलासप्रियता और धाभाइयोंका राणा अरिसिंहके लिये षड़यन्त्र रचनेके कारण देशको रोगसे मुक्त करनेके सब उपाय व्यर्थ हुए। सम्वत् १८२८ में जब बून्दीवालोंने छलसे राणा अरिसिंहका वध किया और उदयपुरके राज्यासनपर अज्ञान हमीर बैठा तो दरबारके प्रत्येक व्यक्तिने अपना स्वातन्त्र्य और अधिकार बढ़ाया जिससे राज्यमें सरकारी शासनकी छाया मात्र भी न रह गई। अब इस समय आप (राणा) के सालुम्ब्रा सरदार भीमसिंह और उसके भाई अर्जुनसिंहके मतसे चलने और अपने राज्यमें विदेशियोंको सेनामें भरती करनेके कारण पहलेके दोष और भी दृढ़ हो गये। आप तथा श्री बायजी राज (राजमाता) के विदेशियों तथा दक्षिणियोंपर विश्वास रखनेके कारण वह रोग संक्रामक हो गया है; इसके अतिरिक्त आपका मन भी ठिकाने नहीं है। अब इस समय क्या करना चाहिये ? हां, अब भी इस रोगकी औषधि मिल सकती है। हम लोगोंको इस समय एका करके प्राचीन प्रधान वंशको पुनः उनके अधिकार दे देने चाहियें, इससे हम लोगोंको सफलता प्राप्त होगी और नहीं तो कमसे कम उस रोगकी वृद्धि न हो सकेगी। यदि इस समय ये उपाय नहीं किये जायंगे तो तो यह रोग फिर बढ़ जायगा और उसका दूरीकरण मानुषी शक्तिके बाहर हो जायगा। दक्षिणी हो हमारे मार्गके कण्टक हैं। इस समय उनका हिसाब साफ करके उन्हें निकाल दीजिये। स्थान स्थान पर इस समय सन्धियां हो रही हैं। मैंने सब मुख्य मुख्य बातें आपको समझा दी हैं। यदि मैंने कुछ अनुचित कहा हो तो उसके लिये क्षमा कीजिये। इस समय हम लोगोंको भविष्यकी चिन्ता करनी चाहिये

आदि घटनाएं सब एक साथ ही होनेके कारण देशपर उनका बहुत कुछ प्रभाव पड़ा। सिन्धियाके उत्तराधिकारीके नाबालिग होनेके कारण हिन्दुस्थानके सूबेदार अम्बाजीको बहुत लाभ हुआ और उनकी शक्ति और भी बढ़ गई। इस अवसरपर लखवा और मराठा बाइयोंने खेतोके ठाकुर दुर्जनसाल और इतियाके राजाकी

और राजाओं तथा मन्त्रियोंको आपसमें मिल जाना चाहिये। देशके कल्याणसे सबोंका कल्याण होगा। यह एक ऐसा रोग है कि यदि इसकी औषधि न की गई तो फिर हम सब अधःपतित हो जायंगे।

एक दूसरे पत्रमें लिखा है:—

"देशमें जो रोग फैला है, बहुत सोच विचारकर उसके दूरीकरणका उपाय करना चाहिये।

"राणा अमरसिंहने उस रोगको नष्ट करके देशमें शासन तथा न्यायकी अच्छी व्यवस्था की।

"राणा संग्रामसिंहके समय वह पुनः प्रकट हुआ।

"राणा जगत्सिंहके समय उसका बीज सर्वत्र बोया गया।

"राणा प्रतापसिंहके समय वह बीज अङ्कुरित हुआ।

"राणा राजसिंहके समय उसमें फल लगा।

"राणा अरिसिंहके समय वह फल पका।

"राणा हमीरके समय वह बांटा गया और सब लोगोंने उसमें अपना अपना भाग पाया।

"और अब आप (राणा भीमसिंह) ने उसे अच्छी तरह खाया है। आप उसके गुण तथा स्वादसे भली भांति परिचित हैं। साथ ही सारा देश भी उसका स्वाद जानता है। अब यदि आप उसकी कुछ औषधि न करेंगे तो निश्चय ही आपको कष्ट भोगना होगा और देश तथा विदेशमें आपकी प्रतिष्ठा न्यून होगी। इस समय अपने कर्तव्यसे विमुख न होइये नहीं तो लोगोंका आपपर जो विश्वास है वह उठ जायगा और देश आपके हाथसे निकल जायगा।

इस प्रसंगके मन्त्री अग्रजी मेहताके नाम लिखे हुए तीसरे पत्रमें लिखा है:—

"यदि दूध जमाया जाय तो उसका रूप बदल जाता है। यदि उसमेंसे मक्खन

शक्तिको नष्ट करना चाहा पर इस युद्धमें दतियाके राजाकी जान गई। लखवाने राणाको लिखा कि आप अम्बाजोसे सम्बन्ध न रखें और उसकी ओरसे जो अधिकारी आपके यहां हैं उन्हें निकाल दें। उधर अम्बाजीने अपने सहकारी गणेशपन्तको लिखा कि शेणवी ब्राह्मणों तथा लखवाके पक्षपातियोंको मेवाड़से निकाल दो। इसपर गणेशपन्तने राणाके मन्त्रियों तथा सरदारोंसे सहायता मांगी; पर उन लोगोंने आपसमें सलाह करके एक गहरी चाल चलना निश्चय किया। इधर तो उन्होंने गणेशपन्तकी बात स्वीकार कर ली और उधर शेणवी ब्राह्मणोंको जावदसे चलकर गणेशपन्तपर चढ़ाई करनेकी सलाह दी और स्वयं भी उन्हें इस कार्यमें सहायता देनेके लिये तैयार हुए। गणेशपन्त और शेणवियोंकी सावामें मुठभेड़ हुई। इस लड़ाईमें गणेशपन्त हार गया और उसकी तोपें शेणवियोंने ले लीं। गणेशपन्तने भागकर चित्तौड़में आश्रय लिया। चूण्डावतोंने उसे उत्तेजना देकर फिर लड़नेपर तैयार किया; लेकिन इस लड़ाईमें भी वह हार गया और हम्मीरगढ़में जा छिपा। इसपर गणेशपन्तके क्षत्रिय साथियोंने उसका साथ छोड़ दिया और

निकालकर छाछ फेंक दी जाय तो उससे कुछ हानि नहीं होती पर यदि दूध मथा जाय और उसमें कालिख पड़ जाय तो उसमेंसे मक्खन निकालनेमें योग्यता की अवश्यकता होती है। इस समय आपमें उसी योग्यताका होना आवश्यक है। मारवाड़ रूपी दूधमें विदेशियोंकी कालिख पड़ गई है। जिस प्रकार हो उसे निकाल देना चाहिये। यदि आप उनपर विश्वास करेंगे तो शीघ्र हाथसे निकल जायगा।

"चन्द्रमाके प्रकाशमें चन्द्रज्योति * की क्या आवश्यकता है?

"मराठोंके झूठे और बनावटी रुपयोंपर कौन विश्वास करता है?

"जो व्यक्ति आपसे कहे कि मैं परसे कबूतर बना सकता हूं उसका विश्वास कभी न कीजियेगा।

"विदेशमें लोग कहते हैं कि मेवाड़में अब कोई राजनीतिज्ञ नहीं रहा; यह बात उसकी प्रतिष्ठापर धब्बा लगानेवाली है।

---

* एक विशेष प्रकारकी रोशनी।

शत्रुओंसे मिल गये; १५००० आदमियोंने हम्मीरगढ़को घेर लिया। गणेशपन्त नानाने बड़ी वीरतासे अपना बचाव किया; कई बार शत्रुओंपर छिप छिपकर धावा किया गया। इस लड़ाईमें हम्मीरगढ़के राजा धैर्यके दोनों पुत्र मारे गये। इतनेमें गुलाबराव कदमने अम्बाजीकी भेजी हुई एक नवीन फौज आ पहुंची और नाना उस फौजको साथ लेकर हम्मीरगढ़से अजमेर चला गया। मार्गमें मूसामूसी नामक स्थानके निकट चूण्डवतोंने उसपर फिर धावा किया। इस बार भी उनकी पूरी जीत हो चुकी थी, पर इतनेमें एक सवारकी घोड़ी निकल गई और वह चिल्लाया —'भागी, भागी'। साथ ही एक व्यक्ति, जिसने उसे पकड़ लिया था, बोला—'मिल गई, मिल गई।' इस शोरसे फौजमें गड़बड़ी फैली और चूण्डावत जो उस समय प्रायः शत्रुओंपर विजय पा चुके थे, मैदान छोड़कर भाग गये। इस भगेड़में बहुतसे लोग मारे गये जिनमें सिन्धी सरदार चन्दन भी था। जो राजपूत यहांसे भाग गये थे, उनके लिये देवगढ़के ठाकुरने * शाहगढ़का फाटक खोलकर उन्हें आश्रय दिया। चूण्डावत राजपूतोंका इस प्रकार भागना देखकर विपक्षियोंके भाटोंने उनकी बहुत हंसी उड़ाई और अनेक कविताएं रचीं। गणेशपन्तका अधिकार बहुत कम हो गया और धीरे धीरे बहुतसे स्थान उसके हाथसे निकल गये। राणाने भी अपना बहुतसा देश मराठोंसे छीन लिया। अब मेवाड़ एक अखाड़ा बन गया जिसमें अम्बाजी और लखवा सरदार आपसमें सिन्धियाकी ओरसे भारतका प्रधान बननेके लिये झगड़ने लगे। लखवाने जिसकी सहायता स्वार्थवश मारवाड़के प्रायः सभी ठाकुर और सरदार करते थे, हमीरगढ़के किलेपर जो उस समयतक नानाके पास था, चढ़ाई की। कोई दो हजार गोलियां हम्मीरगढ़के किलेकी दीवारपर पड़ी थीं और उसके दुर्गम प्रवेशकरनेके लिये मार्ग निकल आया था कि इतनेमें बालाराव इङ्गले, बापू सिन्धिया और यशवन्तराव सिन्धिया

* टाड साहब कहते हैं—'मैं उसे अच्छी तरह जानता हूं। वह शरीरसे खूब हृष्ट पुष्ट और साढ़े छः फीट ऊंचा था। उसका पिता कोई सात फीट ऊंचा था। वह बिना कारण ही मोटे होनेके लिये अनेक औषधियोंका सेवन करता था जिससे बाईस वर्षकी अवस्था में वह मर गया।

की फौजें कोटाके जालिमसिंहकी पलटन तथा अङ्गरेजी कवायद सीखी हुई एक पलटनको लिये अम्बाजीका पुत्र आ पहुंचा। लखवा अपनी फौजको वहांसे हटाकर अपने साथियों सहित चित्तौर चला गया। इधर नाना हमीरगढ़का किला छोड़कर गुसुण्डा नामक स्थानपर चला गया। बेरिस नामक नदीके दोनों किनारे इन दोनोंकी फौजें खड़ी हुईं। अम्बाजीके भाई बालाराव और गणेशपन्तमें फौजके वेतनके सम्बन्धमें कुछ झगड़ा हुआ जिससे गणेशपन्त अङ्गानेरको चला गया। मराठोंमें इस प्रकारकी फूट देखकर लोगोंने अनुमान किया था कि वे शीघ्र ही परास्त हो जायंगे और राजपूतोंकी जीत होगी। लेकिन मराठे बहुत बुद्धिमान् थे, उन्होंने उस झगड़ेको शीघ्र ही मिटा दिया। अन्तमें अङ्गरेजोंने मराठों और राजपूतोंके आपसके सब बखेड़े शान्त कर दिये। गणपतिरावके अङ्गानेर चले जानेसे दोनों फौजें बराबर हो गईं। लेकिन बालारावकी इच्छा लड़ाई करनेकी न थी। इनके अतिरिक्त गुगुल छपरामें एक बार लखवाने बालारावकी जान बचाई थी; उसी बातको स्मरण करके उसने उससे लड़ना उचित न समझा साथ ही उसे इस समय फौजको वेतन देनेके लिये धनकी आवश्यकता थी; इसलिये उसने गुप्तरूपसे लखवासे प्रबन्ध करके उतना धन ले लिया। वे दोनों आपसमें मिल गये और बालाराव लखवाका बहुत अनुगृहीत हुआ और साथ ही बापू सिन्धियाने भी अपनी फौजें वहांसे हटा लीं जिससे लखवा एक प्रकार बिलकुल निश्चिन्त हो गया। इधर अम्बाजीने नानाकी सहायताके लिये अङ्गरेजी कवायद सीखी हुई एक फौजको सदरलैण्ड नामक एक अङ्गरेजके साथ भेजा। लेकिन सदरलैण्ड और नानामें भी झगड़ा हो गया; सदरलैण्ड लौट गया और उसके स्थानपर जार्ज टामस नामक एक और अङ्गरेज उसकी सहायताके लिये आया। नाना और लखवा, इस समय एक दूसरेके शत्रु हो रहे थे। लेकिन राणाके लिये दोनों ही एक समान थे। दोनों दलोंकी फौजें एक दूसरेके सामने * वर्षा ऋतुमें कोई

* बनास नदीके दाहिने किनारेपर दोनों फौजें खड़ी थीं। लखवाकी फौज शाहपुराके दक्षिण और दस मीलपर अक्लो नामक ग्राममें थी और नानाकी फौज कदेरा नामक ग्राममें थी।

छः सप्ताहतक खड़ी थीं इसलिये राणाको समय समयपर दोनों पक्षोंका समर्थन करना पड़ता था।

दुर्जनसालने मेवाड़के सरदारोंकी सहायतासे नानाकी फौजको घेर लिया और अम्बाजीकी ओरसे सहायताके आनेके जो मार्ग थे उन्हें बन्द कर दिया। लेकिन तामसने शाहपुरासे चढ़ाई करके दुर्जनसालकी सब चेष्टाएं व्यर्थ कर दीं और आगे बढ़कर लखवापर धावा किया। इतनेमें बड़े जोरसे आन्धी आई और इतना जल बरसा कि उसकी फौज तितर बितर हो गई, नदीमें बाढ़ आनेके कारण उसके बहुतसे सिपाही डूब गये तथा सारा नगर नष्ट हो गया *। लखवाने इस अवसरपर मारवाड़के सरदारोंकी सहायतासे तामसपर धावा किया और उसकी पन्द्रह तोपें छीन लीं। शाहपुराके राजाको अन्य सरदारों तथा राजाओंने ऐसा धमकाया कि उसने नानाकी रसद बिलकुल बन्द कर दी। अब विवश होकर नानाने वह स्थान छोड़ कर सङ्गनेरमें जाकर आश्रय लिया। नानाने निश्चय कर लिया कि जिस तरह होगा मेवाड़के सरदारोंसे अवश्य बदला लूंगा जब वर्षा ऋतुका अन्त हो गया तो इसने अम्बाजीकी सहायतासे फिर झगड़ा आरम्भ कर दिया। चारों ओर डकैती और लूट मार होने लगी। अरावली पर्वतके नीचे चूण्डावतोंकी जितनी जागीरें थीं सब नष्ट कर दी गईं; किले लूटे गये और यहांसे बहुतसा धन कर स्वरूप वसूल किया गया। तामसने देवगढ़ और अमेतको घेर लिया, कुछ देरतक लड़नेके उपरान्त उन्हें भी विवश होकर बहुत सा धन देना पड़ा। काशीतल और लुसानीपर उन्होंने अपना अधिकार जमा लिया। लुसानीवालोंने बड़ी वीरतासे इनका मुकाबला किया था इसलिये वह किला बिलकुल नष्ट कर दिया गया। लखवाके आधीन अम्बाजीका जितना देश था वह सब उसके हाथसे निकल गया और मेवाड़में

* सम्वत् १८५६ सन् १८०० ई० में लखवाने शाहपुराके राजाको जहाजपुरके दुर्गका अधिकारी बनाया था। यद्यपि राणाकी आज्ञासे यह किला शाहपुराके राजाको दिया गया था, तौभी लखवाने उसके लिये दो लाख रुपये लिये जिससे लखवा राणाकी दृष्टिसे गिर गया था।

नानाके आधीन * जितनी जागीरें तथा किले थे, वे सब उसे विवश होकर सौंप देने पड़े।

अब सिन्धिया मेवाड़की गणना अपने अधीनस्थ राज्योंमें करने लगा। मराठोंने जिस प्रकार मेवाड़में अपने पांव फैलाये उसका पूरा वर्णन ऊपर किया जा चुका है। सम्वत् १८२६ से १८३१ तक जिन जिन जागीरोंको मराठोंने अपने हाथमें लिया था, उनका कर वे वि० सं० १८४८ तक लेते रहे। जब सालुम्ब्रा सरदार विद्रोही हो गया तो सिन्धियाने चित्तौड़पर अधिकार जमा लिया, वहां अम्बाजीको नियत कर दिया और उसके पास कुछ फौज राणाजीने गई हुई जागीरोंको लौटा लेनेके लिये छोड़ दी। अम्बाजीने कहांतक अपना कर्त्तव्य पालन किया, मेवाड़के धनसे कहांतक अपनी मुट्ठी गरम की, अपनेको भारतका एकमात्र अधिकारी बनानेकी कितनी चेष्टाएँ कीं, चारों ओर अपने नियत किये हुए अधिकारियोंको रखकर सारे देशको अपने हाथमें रखनेका कितना प्रयत्न किया और उन अधिकारियोंने मेवाड़को किस प्रकार सदाके लिये झगड़े बखेड़ों का घर बना दिया आदि सब बातें विस्तारपूर्वक अबतक लिखी गई हैं। अम्बाजी और लखवाके आपसके वैमनस्यके कारण अभागी राणा और उनकी प्रजाको द्रव्याभाव और अशांन्तिके कारण बहुत दुःख उठाना पड़ा। सिन्धियाने अपनी कुछ फौज अम्बाजीके अधिकारमें वहां रख दी और और उसे किसी विशेष कार्य्य करनेकी आज्ञा न दी। इससे सिन्धियाको बहुत लाभ हुआ; क्योंकि उसे बिना कुछ व्यय किये ही आवश्यकता पड़नेपर सहायतार्थ वह फौज मिल सकती थी।

लखवाने मेवाड़की ओर कूच किया। अगजी मेहता राणाकी दीवान नियत किया गया और चूण्डावत राजपूत फिर सबल हो गये। लखवाने शाहपुरके ठाकुर पर छः लाख रुपये वार्षिक कर लगाया और यह रुपये वसूल करनेके लिये जहाजपुरका परगना स्वयं ले लिया और उसमेंके कुछ गांवोंको रेहन रख दिया। जालिमसिंह बहुत दिनोंसे जहाजपुरपर दृष्टि लगाये हुए था; उसने इस अवसर पर मराठोंको सब रुपये दे दिये और जहाजपुर परगनेपर अपना अधिकार कर

* उस समय वल्लभ तांतिया और बख्शीनारायणराव (शैणवी ब्राह्मण) सिन्धियाके दीवान थे।

लिया। लखवाने मेवाड़पर २४ लाख रुपये कर लगाया और यह रुपये शक्तकी सहायतासे वसूल किये। इसके उपरान्त वह मेवाड़में यशवन्तराव भाऊको नियत करके जयपुर गया। राणाके प्रधान अगजी मेहताके सहकारी मौजीरामने यूरोपियन ढङ्गसे कवायद जाननेवाली फौजको रखना निश्चय किया था; क्योंकि उस समय प्रायः सभी देशी राज्योंमें शिक्षित सेनाएँ थीं। जब अगजी मेहताने उस फौज तथा उसके तोपखानेके खर्चके लिये धनकी सहायता मांगी तो सब सरदार बिगड़ गये और उन्होंने उसे कैद कर लिया। पुराना प्रधान सतीदास उसके स्थान पर नियत किया गया और उसका भाई शिवदास भी कोटासे बुलाया गया। इस समय चूण्डावतोंने भी राणाके देशका बहुत सा भाग अपने अधिकारमें कर लिया।

ई० सन् १८०६ में इन्दौरके विशाल समरक्षेत्रमें महाराष्ट्र राज्यके शासन सम्बन्धमें अपने अपने भाग्योंकी परीक्षा करनेके लिये १५०००० सेना एकत्र हुई थी। इस लड़ाईमें होलकरको अपनी तोपों बन्दूकों तथा अन्यान्य सामान और साथही अपनी राजधानीसे भी हाथ धोना पड़ा था। निःसहाय होकर वह मेवाड़की ओर भागा; पर साथ ही सदाशिव और बालारावने एक बड़ी फौज लेकर उसका पीछा किया। भागते समय होलकरने रतलाम लूटा और शक्तावतोंके भिण्डीर नामक दुर्गमें पहुंचकर उनसे कुर मांगा। लेकिन पीछे पीछे सिन्धियाकी फौज चली आती थी इससे वह अधिक समयतक वहां ठहर न सका और भागकर हिन्दुओंके प्रसिद्ध तीर्थस्थान नाथद्वारामें * पहुंचा। नाथद्वारेके मन्दिरमें पहुंचकर श्रीकृष्णजीको हाथ जोड़कर वह विक्षिप्तोंके समान मूर्त्तिके प्रति कहने लगा कि तुम्हारे कारण मैं हार गया हूं और इस हारका अपयश तुम ही पर है। इसके उपरान्त उसने तीन लाख रुपये वहांके पुजारियोंसे मांगे। इन रुपयोंको वसूल करनेके लिये वह कुछ पुजारियोंको अपने साथ डेरेतक ले गया। वहांके मुख्य पुजारी दामोदरजीने व्रजाधीश (श्रीकृष्ण) की मूर्त्तिको सुरक्षित रखनेके लिये उदयपुर भेजना निश्चय किया। कटारियाके चौहान सरदारने—जो उस प्रान्तके सोलह सरदारोंमेंसे एक था—उस पवित्र देवमूर्त्तिको उदयपुर पहुंचा देनेका काम

* नाथद्वारा उदयपुरसे उत्तरकी ओर २५ मीलपर है। आगे चलकर उसके सम्बन्धकी और बातें लिखी जायंगी।

अपने ऊपर लिया और बीस सवारोंको साथ लेकर वह उस मूर्त्तिको राजधानी तक पहुंचा। आया लौटते समय मार्गमें उसे होलकरकी फौजके कुछ सिपाही मिल गये जिन्होंने चौहान सरदारसे घोड़े मांगे भला, पृथ्वीराज चौहानके वंशजको यह बात कब सह्य हो सकती थी? उसने उन लुटेरोंको घोड़े देनेकी अपेक्षा उनसे लड़ना ही अधिक उत्तम समझा। उसने साथियोंसे अपना अनुकरण करनेके लिये कहकर शत्रुओंपर वार किया। इस लड़ाईमें चौहान सरदार तथा उसके साथी मारे गये। इस प्रकारकी और भी अनेक घटनाएं इतिहासमें लिखने योग्य हैं जिनमेंसे अधिकांशके नायक कोटरियाके चौहान है। अस्तु, होलकरकी लूट खसोटके कारण छः मासतक नाथद्वारा बिलकुल उजाड़ पड़ा रहा। इधर छः मास तक देवमूर्त्ति जयपुरहीमें रही, लेकिन राणाको वहां भी उसके सुरक्षित रहनेका विश्वास न था इसलिये उसने वह देवमूर्त्ति निकटके गसयार नामक पर्वतपर भेज दी और मुख्य पुजारी भी बचावके लिये वहीं किला बनाकर रहने लगा। जब उसने देखा कि लोग उसे तङ्ग करनेमें धर्मका ध्यान भी नहीं करते तो उसने अपनी रक्षाके लिये चार सौ सिपाही रखे और शस्त्रके बलसे मन्दिरों तथा देवमूर्त्तिकी रक्षा करना आरम्भ किया।

इधर होलकर वहांसे लौटकर बनेरा और शाहपुरा होता हुआ और इन दोनों स्थानोंसे कर लेता हुआ अजमेर पहुंचा। जो धन उसने श्रीकृष्णजीके भक्तोंसे लिया था, उसका कुछ भाग अजमेर पहुंचकर उसने ख्वाजः पीरकी मसजिदमें मुल्लाओंको दे डाला! वहांसे चलकर वह अजमेर पहुंचा। सिन्धियाकी फौज होलकरका पीछा करती हुई उदयपुर पहुंची जिससे राणाको एक बड़े संकटका सामना करना पड़ा। सिन्धियाने उदयपुर पहुंचते ही राणासे करके तीन लाख रुपये मांगे। राजकोषमें उस समय कुछ भी न था इससे राणाको विवश होकर रुपये देनेके लिये घरके सामान तथा रानियोंके जेवर बेचने पड़े। मेवाड़के सूबेदार यशवन्तराव भाऊने भी उसी समय अपना कर मांगा और उसके वसूल करनेके लिये अपने सहकारी तांतियाको वहां नियत किया। तांतियाने यह रुपये बड़ी निर्दयतासे वसूल किये। मेवाड़के सरदारों, जागीरदारों और प्रजाको बहुत कष्ट उठाना पड़ा; खेतिहरोंके पशु आदि जब्त कर लिये गये और अनेक अत्याचारोंको

सहायतासे धन इकट्ठा किया। जिन लोगोंके पास रुपये नहीं थे उन्हें अपने बचाव के लिये देश छोड़कर भागना पड़ा।

प्रसिद्ध लखवाका वि० स० १८५८ (सन् १७०३) में सालुम्ब्रामें देहान्त हुआ। अम्बाजीका भाई बालाराव उसके स्थानपर आया और आकर शक्तावतों और दीवान सतीदाससे मिल गया। शक्तावतों और सतीदासने राणाको अपने वशमें रखनेके लिये चूण्डावतोंको पहले हीसे निकाल दिया। जालिमसिंह जो पहलेहीसे चूण्डावतोंसे द्वेष रखता था, अब अपना कार्य साधन करनेके लिये शक्तावतोंसे मिल गया। इन लोगोंने मिलकर दीवान देवीचन्दको जो चूण्डावतोंकी ओरसे राणाका दीवान था, कैदकर लिया। बालारावने बड़ी क्रूरतासे चूण्डावतोंकी जागीरें लूटीं और नष्ट कीं। इसलिये चूण्डावत सरदार अपने बचावका उपाय सोचनेके लिये चौगान नामक स्थानमें एकत्रित हुए। जब मराठोंको यह समाचार मिला तो वे राजप्रासादमें पहुंच गये और राणासे कहने लगे कि दीवान मौजीरामको हमारे सपुर्द कर दीजिये। लेकिन राणाने उनकी बात स्वीकार न की। इसपर पहले तो मराठोंने धमकियां दीं पर जब धमकियोंसे कार्य सिद्ध न हुआ तो उन्होंने फौजको जो किलेको घेरे हुए खड़ी थी, महलमें घुसनेकी आज्ञा दी। जब वेलोग महलके अन्दर घुसे तो वीर मौजीरामने उनके शत्रुओंको पकड़कर कैद कर लिया। इन कैदियोंमें उसके पुराने शत्रु गणेशपन्त, जैमलकर और उदयकुंवर थे। उदयकुंवर की दुष्टताके बदले उसके गलेमें हाथीकी जञ्जीर डाली गई और बालाराव स्नान गृहमें कैद किया गया। जब यह लोग इस प्रकार पकड़े गये तो चूण्डावतोंने घाटीपर पहुंचकर फौजी पड़ावपर धावा कर दिया और शत्रु की सेनासे हथियार रखवा लिये। उस समय मराठोंके पास हिमर्स नामक एक अङ्गरेज था। वह अपनी फौज लेकर वहांसे भाग गया और गाडरमाला नामक स्थान में जा छिपा। जालिमसिंहने अपने मित्र बालारावको छुड़ाना निश्चय किया और शक्तावतोंकी सहायता पाकर भिण्डोर और लावाके सरदारोंके आधिपत्यमें कुछ सेना लेकर राजधानीके प्रधान मार्गपर छैजा नामक स्थानको ओर बढ़ा। यदि उसी समय राणा इन सरदारोंको मार डालते तो कुछ अनुचित न था। लेकिन उन्हें भय था कि इससे सब मराठे बिगड़ जायंगे। उसने छः हजार सिन्धी गोसाइयोंको इकट्ठा

करके मराठोंसे लड़नेका विचार किया। इसके अतिरिक्त उसके साथमें बीर जय-सिंह तथा कुछ खेची भी थे। वह पांच दिनोंतक मराठोंका मार्ग रोके रहा। अन्तमें राणाको विवश होकर बालाराबको छोड़ देना पड़ा। इसी लड़ाईमें जालिमसिंह ने जहाजपुरका किला तथा उसके आस पासके सब स्थान अपने अधीन कर लिये। बालाराबके छूट जानेपर मराठोंने इस लड़ाईके व्ययकी एक सूची जैसा कि प्रायः ऐसी अवस्थामें हुआ करता है, राणाके पास भेजी। उन्हीं दिनों होलकर भी वहां आनेवाला था; इसलिये मराठोंने उसके आनेसे पहले ही सब प्रकारके अत्याचारों से अपने रुपये वसूल करनेमें कोई कसर न रखी।

वि० सं० १८६० (सन् १८०४) में होलकरने अपनी छितरी हुई सेना फिर एकत्र की। इन्दोरकी लड़ाईके उपरान्त उसने भिण्डरके सरदारसे जो रुपये मांगे थे वह अबतक न मिले थे। इसलिये उसने उसकी जागीरको नष्ट कर देनेकी धमकी दी। लेकिन दो लाख रुपयेपर सब बातें तै हो गईं और इन रुपयोंकी वसूलीके लिये उसे कई गांव मिल गये। इसके उपरान्त वह उदयपुरकी ओर बढ़ा। मार्गमें उसे राणाकी ओरसे अजीतसिंह नामक एक दूत मिला। होलकरने उसके द्वारा ४० लाख रुपये राणासे मांगे और कहा कि इसमेंसे एक तिहाई रुपये इसी समय भेजो। महलकी बहुत सी सुखसामग्री, रानियोंके आभूषण तथा और बहुतसी वस्तुएँ बेच कर, और प्रजासे वसूल करके १२ लाख रुपये बड़ी कठिनतासे जमा करके होल-करके पास भेजे गये और बाकी रुपयोंके लिये महलकी रानियां तथा मुख्य मुख्य नगरनिवासीगण मराठोंके पास इसलिये भेज दिये गये कि बाकी रुपये आपको देकर यह लोग छुड़ा लिये जायंगे। इसके उपरान्त होलकरने राणासे भेंट की। उदयपुरसे चलकर होलकरने लावा और बेदनूरपर चढ़ाई की और इन दोनों स्थानों को अपने अधीन कर लिया। राणाने बहुत सा धन देकर इन दोनों स्थानोंको भी छुड़ा लिया। केवल देवगढ़वालोंने साढ़े चार लाख रुपये होलकरको दिये थे। आठ मासतक मेवाड़को नष्ट करनेके उपरान्त होलकर हिन्दुस्थानकी ओर बढ़ा *।

* होलकरके साथ हरिनाथ चेला नामक एक सरदार था। जब वह बनसीन के निकट पहुंचा तो मार्गमें सतोला राज्यके भील उसके कुछ ऊंट चुरा ले गये। हरिनाथने गुलाबसिंह चूण्डावतको बुलाया। जब वह अपने आठ सम्बन्धियों सहित

उसके साथमें राणाका प्रतिनिधि अजीतसिंह भी था। होलकरने अपने प्रतिनिधि बालारावको बाकी रुपयोंके लिये मेवाड़ हीमें छोड़ दिया था। जब होलकर शाहपुरामें पहुंचा तो सिन्धियाकी सेनाने मेवाड़में प्रवेश किया। जब उन दोनों की सेनाएं एकत्र हुईं तो उन लोगोंने आपसमें मिलकर अङ्गरेजोंके विरुद्ध शस्त्र उठानेका विचार किया। सेनापतियों तथा सरदारोंने बृटिशसत्तासे लड़नेके सम्बन्ध में सब बातें निश्चय भी कर ली थीं लेकिन उन्हें इस काममें यश न मिला। इधर अङ्गरेजोंकी विजयके कारण राजस्थान परतन्त्र हो गया था और उसे बहुत हानि सहनी पड़ी थी। उस हानिकी पूर्त्ति करनेकी शक्ति अङ्गरेजोंमें है; और उसकी पूर्त्ति करना न्यायसङ्गत है।

सन् १८०५ ई० की वर्षा ऋतुमें बेदनूरके मैदानमें सिन्धिया और होलकार की सेनाएं डेरा डाले पड़ी थीं। उनकी इच्छा थी कि एक बार समरभूमिमें जाकार एक दूसरेसे बदला लें; लेकिन फिर भी वे हिचकते थे। उत्तरी हिन्दुस्थान में उन दोनोंकी सत्ता एक प्रकार बिलकुल ही नष्ट हो गई थी। नर्मदा नदीके उत्तर तथा दक्षिण ओरके सब उपजाऊ देश उनके हाथोंसे निकल गये थे, और बड़ी बड़ी सेनाएं उन देशों में लूट मार करती थीं; क्योंकि सिन्धिया और होलकरने उन्हें एक प्रकार बिलकुल ही स्वतन्त्र बनाकर छोड़ दिया था। लगातार दस वर्षोंतक राजस्थानमें मैंने इसी प्रकारकी लड़ाइयां देखीं। उस समय मराठी सेनाएं देशमें लूट मार करके अपना उदर पोषण करती थीं। इन दस वर्षोंमें सर्वसाधारणको मराठोंके हाथोंसे अनेक कष्ट भोगने पड़े। छोटे मोटे राज्योंको वे इतनी दुर्दशा करते थे कि मानों एकदम उनका नाश ही कर देंगे। मध्य

हरिनाथके सामने आया तो हरिनाथने उससे कहा कि जबतक हमारे ऊंट न मिलेंगे तबतक तुम यहीं कैद रखे जाओगे। दूसरे दिन सवेरे जब हरिनाथ हाथी पर सवार होकर चलने लगा तो उसने आज्ञा दी कि राघौत सरदारको कैद करके साथ ले चलो। गुलाबसिंहने अपनी तलवार खींच ली और हरिनाथपर वार किया लेकिन उसकी तलवार हौदेपर लगकर टूट गई। पहले वारके खाली जानेपर उसने अपना खञ्जर हाथीके शरीरमें घुसेड़ दिया। अन्तमें मराठोंने उनपर चढ़ाई की और उन्होंने बड़ी वीरतासे उनसे लड़कर अपने प्राण दिये।

भारतके कुछ राजाओं और ठाकुरोंने * मिलकर अङ्गरेजोंको सहायता देनेकी इच्छा की। लेकिन अन्तमें मराठोंके अत्याचारसे छुटकारा पानेके लिये अङ्गरेजोंसे उन्होंने जो सहायता ली थी, उससे वे अपनी स्वतन्त्रता बिलकुल ही खो बैंठे। मराठों और अङ्गरेजोंमें सन्धिकी कोई सम्भावना न थी; क्योंकि सिन्धिया कहता था कि यदि मुझे गोहद और गवालियरकी रियासतें दे दी जायं तो मैं सन्धि कर लूं। इन रियासतोंके वास्तविक अधिकारियोंके दुर्भाग्यवश लार्ड कार्नवालिसने अङ्गरेज सरकारके पुराने सहायकोंके लाभकी ओर कुछ भी ध्यान न दिया और सिन्धियाके पास सन्धि तथा मैत्रीके लिये एक दूत भेज दिया †।

मराठे सोचते थे कि यदि अङ्गरेजोंसे लड़ाई छिड़ गई तो वे अपने सामान और बालबच्चोंको मेवाड़के सुरक्षित दुर्गोंमें रख देंगे। सिन्धियाके दरबारमें राणाकी ओरसे चूण्डावतोंका पक्षपाती सरदारसिंह उपस्थित था। उसी समय अम्बाजी सिन्धियाका प्रधान मन्त्री नियत हुआ था ‡। अम्बाजीके बैरी लखवाको राणाने सहायता दी थी, इसलिये अम्बाजी राणाका भी शत्रु हो गया था। अम्बाजीने प्रस्ताव किया कि मेवाड़के दो भाग करके वहां मराठे सरदार नियत कर दिये जायं। लेकिन

* गोहद और ग्वालियरके राणा, राघवगढ़ और बहादुरगढ़के खेची सरदार, और भोपालके नवाबने वारेन् हेष्टिङ्गस्के समयमें अङ्गरेजोंसे सन्धि की थी। इनमेंसे पहले तीन सरदारोंने तो कभी स्वतन्त्रताकी छायामात्र भी न देखी थी और चौथा भोपालका नवाब संयोगवश पहले हीसे अङ्गरेजोंके इच्छानुसार चलता था। सन् १७८२ ई० में अङ्गरेज सरकारके लिये जो काम भोपालके नवाबने किये थे, उन्हें स्मरण करके लार्ड हेष्टिङ्गस्ने उसे पूरी स्वतन्त्रता दे दी। लेकिन सिन्धियाने पहले कपट किया था इसलिये उसकी सन्धि विश्वसनीय न थी।

† मि० ग्रेम मरसरके साथ जो लोग दूत बनाकर सिन्धियाके पास भेजे गये थे, उनमें मूलग्रन्थकार टाड साहब भी थे। सन् १८०५ के दिसम्बर मासमें ये लोग गवालियरसे प्रस्थानित हुए थे और सन् १८०६ की बसन्त ऋतुमें सिन्धियाके दरबारमें पहुंचे थे, जो उस समय मेवाड़के खण्डहरोंमें डेरा डाले पड़ा था।

‡ इसके अतिरिक्त बापू चिटनवीस, माधोबा हजूरिया और बालाजी भास्कर भी सिन्धियाके दरबारके मन्त्री थे।

इस सम्बन्धमें उसका सारा उद्योग निष्फल हुआ। इस अवसरपर सिन्धियाकी स्त्री बायजाबाई भी अम्बाजीसे रुष्ट हो गई थीं और उसने राणाकी संरक्षाके लिये बहुत उद्योग किया था। बायजाबाई प्रसिद्ध शूरजीकी कन्या थीं और सिन्धियापर उनका अच्छा प्रभाव था। यद्यपि बायजाबाई सिन्धियाको समर्पित की गई थीं; लेकिन वह राजपूत जातिके सम्मान और गौरवका अधिक ध्यान रखती थीं। राजस्थानके सभी प्रदेश—विशेषत: मेवाड़ भूमिका वे हृदयसे पूजन करती थीं। अम्बाजीकी दुष्टता देखकर वह उसकी चेष्टा निष्फल करने तथा राजपूत जातिको एकताके सूत्रसे बान्धनेका प्रयत्न करने लगीं। सरदारसिंह चूण्डावत सिन्धियाका दरबार छोड़कर संग्रामसिंह शक्तावतसे जा मिला जो उस उमय होलकरके साथ था। यद्यपि चूण्डावतों और शक्तावतोंमें बहुत दिनोंसे आपसमें वैरभाव था पर इस समय वे लोग आपसका द्वेष भूल गये। कृष्णदास पाञ्चोली भी इनसे मिल गया और उन लोगोंने मिलकर महाराष्ट्रपति—होलकरसे पूछा कि क्या आप मेवाड़को अम्बाजीके हाथ बेच देनेमें सहमत हैं? उसी समय सारी मेवाड़भूमि और मेवाड़पतिकी शोचनीय अवस्थाका चित्र होलकरकी आंखोंके सामने फिर गया। उसने निश्चय कर लिया कि मेवाड़को कभी अम्बाजीके हाथमें जाने न दूंगा। साथही उसने राजपूतोंको एकता करने और आपसके बैरभाव भूलकर एक साथ बैठकर अफीम खानेकी सम्मति दी *। केवल इतनेपर ही उसने सन्तोष न कियां, बल्कि सिन्धियाके पास जाकर उसने राणाकी बहुत प्रशंसा की और कहा कि राणा हमारे महाराजाधिराजाधिराज हैं † उन्हें अपमानित और वैभवच्युत करना उचित नहीं है। इसलिये आपके पूर्वजोंने राणाकी जिस भूमिको अपने अधीन रखा था, वह आप उन्हें लौटा दें। और साथही आदर्शस्वरूप नीमबहेड़ा नामक प्रान्त जो उस समय

* राजपूत प्राय: अफीमका सेवन अधिकतासे करते हैं। वे एक साथ बैठकर अफीम पीनेको प्रेमका चिन्ह समझते हैं। यह चाल मेवाड़ मारवाड़ और गुजरात प्रान्तमें अधिकतासे है।

† सिन्धिया और होलकरके राजा पेशवा थे; पेशवाके राजा सितारा के छत्रपति और छत्रपतिके राजा उदयपुरके राणा थे। इसलिये होलकरके कथनानुसार उदयपुरके राणा उनके 'महाराजाधिराजाधिराज' थे।

उसके अधीन था राणाको दे दिया । अपनी बातकी पुष्टि करते हुए उसने यह भी कहा कि—'यदि इस समय हम लोग राणाको अपने साथ न मिला लेंगे तो हम लोगोंकी बहुत हानि होगी । जब अङ्गरेजोंसे युद्ध होगा तो हम लोग अपने परिवार द्रव्य तथा सामग्री आदि कहां रखेंगे ? इस समय उनसे न मिलनेपर रक्षाके लिये हम लोग उनके दुर्ग न पा सकेंगे।' होलकरके इन वाक्योंको सुनकर सिन्धियाके हृदयमें एक अभूतपूर्व परिवर्त्तन हुआ । उन्होंने बड़े आदरसे राणाके दूतोंको अपने कैम्पमें ठहरनेके लिये स्थान दिया। सिन्धियाके कैम्पसे होलकरका कैम्प बीस मीलकी दूरीपर था। साथही कई दिनोंतक लगातार मूसलधार वृष्टि होती रही; इसलिये इन लोगोंमें किसी प्रकारका परामर्श न हो सका। इस अवसरपर होलकरको समाचार मिला कि राणाने भैरव बख्श नामक एक दूतको लार्ड लेकके पास भेजकर जो उस समय टोंकमें था, प्रार्थना की कि इस समय हमारी सहायता करें और मराठोंको मेवाड़से निकाल दें। होलकरने उसी समय राणाके दूतोंको बुला भेजा। जब कृष्णदास तथा अन्य दूत होलकरके समक्ष उपस्थित हुए तो होलकरने वही पत्र जिसमें उक्त समाचार लिखा था, क्रोधसे कृष्णदासपर फेंककर पूछा कि क्या इसी प्रकार राणा जी मित्रताका निर्वाह करेंगे? राणा हीकी सहायताके लिये मैंने सिन्धियाको त्याग दिया। ऐसी अवस्थामें जब कि मैं समझता था कि फिरङ्गियोंसे युद्ध छिड़नेपर समस्त हिन्दू भाई एकत्र हो कर उनका मुकाबला करेंगे, तुम्हारे प्रभु राणा इस समय अङ्गरेजोंसे सन्धि करनेमें अग्रसर हुए हैं । जिन राणाजीको इस बातका अभिमान था कि—'हमने देहलीके बड़े साम्राज्यकी अधीनता स्वीकार नहीं की, वे इस समय क्या कर रहे हैं? क्या मैंने अम्बाजीके प्रयत्नको इसीलिये निष्फल किया था ? कृष्णदासने उन्हें शान्त करनेकी चेष्टा की; लेकिन बीचहीमें होलकरका मन्त्री अलीकूर तांतिया अपने स्वामीकी ओर देखकर बोल उठा—"इन राङ्गड़ों * का सद्व्यवहार देखिये। ये लोग आप तथा सिन्धियामें विवाद उत्पन्न कराकर दोनोंका नाश कर देंगे। इन लोगोंसे सम्बन्ध छोड़कर सिन्धियासे मिल जाइये, शूरजीरावको भी

* महाराष्ट्र लोग राजपूतोंको 'राङ्गड़ा' कहते हैं । 'राङ्गड़ा' का अर्थ है—प्रचण्ड।

अलग कर दीजिये और अम्बाजीको मेवाड़का सूबेदार नियत कीजिये । नहीं तो मैं आपको छोड़कर सिन्धियासे जा मिलूंगा और उन्हें मालवामें ले जाऊंगा।" भास्करके अतिरिक्त अन्य सभी मन्त्रियोंने तांतियाके कथनकी पुष्टि की। शूरजीराव अलग कर दिया गया। होलकरने उत्तरकी ओर प्रस्थान किया । लार्ड लेकके सेनापतित्वमें अङ्गरेजी सेनाने पञ्जाबतक उसका पीछा किया और व्यास नदीके निकट अङ्गरेजों तथा मराठोंमें सन्धि स्थापित हो गई।

यद्यपि होलकर मेवाड़वालोंसे बहुत रुष्ट था पर उसने राणाको किसी प्रकार की हानि नहीं पहुंचाई। मेवाड़से प्रस्थानित होनेके समय उन्होंने मेवाड़भूमिकी रक्षाके लिये सिन्धियासे कहा था—'अम्बाजीके आक्रमणसे राणाके राज्यकी रक्षा करनेकी मैंने प्रतिज्ञा की थी। जहांतक हो इस प्रतिज्ञाको भङ्ग न होने दीजियेगा नहीं तो आपही इसके उत्तरदायी समझे जायंगे।' लेकिन अभाग्यवश सिन्धियाने उसकी बातपर कुछ ध्यान नहीं दिया और उसी समय मेवाड़पर १६ लाख रुपये कर लगा दिया। इन रुपयोंको वसूल करनेके लिये जान बापूटिस्टको एक पलटनको सदाशिवरावको सन् १८०६ ई० जून मासमें उदयपुर भेजा। सदाशिवरावको उदयपुर भेजनेका एक और अभिप्राय यह था कि जयपुर राज्यकी फौजके कुछ अंशको जो उस समय राणाकी कन्या कृष्णकुमारीसे जयपुरके राजकुमारके विवाह निश्चित करने और राजकुमारीके लिये आभूषण आदि देने आया था, वहांसे निकाल दे।

पाठकगण स्वयं समझ सकते हैं कि इस समय हतभाग्य राणाकी क्या दशा हुई होगी। दुःख और सङ्कटने चारों ओरसे उन्हें घेर लिया था और दुर्दैवने उन्हें बहुतही दीनहीन दशाको पहुंचा दिया था । राजधानीके निकट जयपुरसे आये हुए तीन सहस्र आदमी डेरा डाले पड़े थे। और राणाने जयपुरसे आई हुई खिलत आदिकी रसीद भी अपने दूतके हाथ भेज दी थी जो उस समय शाहपुरातक पहुंच गया था। इधर मारवाड़के राजा मानसिंहने अपना एक दूत राणा भीमसिंहके पास भेजकर कहलाया—"आपने पहलेहीसे निश्चय कर लिया था कि अपनी कन्या कृष्णकुमारीका विवाह मारवाड़-नरेशसे करूंगा । वह मारवाड़ नरेश जिसे आपने अपनी कन्या देनेके लिये कहा था, अब इस संसारमें नहीं

है और उसकी स्थानपर इस समय मैं हूं। आपका लक्ष मारवाड़की राज्यासनपर बैठनेवाले व्यक्ति पर था न कि किसी व्यक्ति विशेषपर। मारवाड़की राज्यासनपर इस समय मैं हूं। इसलिये आपको उचित है कि अपनी कन्याका विवाह मेरे साथ कर दें। यदि आप मेरी बातपर ध्यान न देंगे तो इसका प्रायश्चित्त आपको भोगना पड़ेगा।' कहते हैं कि मानसिंहकी दरबारियोंने उन्हें यही सब बातें कहनेकी सम्मति दी थी। साथ ही मानसिंहने चूण्डावत सरदार अजीतसिंहको जिसपर उस समय राणाकी बहुत कृपा रहती थी अपनी ओर मिला लिया और उसके द्वारा राणाकी इच्छाको बदल देनेका विचार किया।

ललना ललाम हेलनाके * अनुपम सौन्दर्यने जिस प्रकार उसके स्वामी तथा उसके प्रतिद्वन्द्वियोंको अनन्तकालके लिये ध्वंस कर दिया था, उसी प्रकार सुरसुन्दरी कृष्णकुमारीका लावण्य भी उसके पिता तथा प्रणयार्थियों (जयपुरके राणा जगत् सिंह और मेवाड़के राणा मानसिंह) के विनाशका कारण हुआ, और अन्तमें उसीसे इस सुकुमारीका भी नाश हुआ। उसके रूपहीने उसका सर्वनाश किया। सिन्धियाने जयपुर नरेशसे कुछ रुपसे मांगे थे; पर वे रुपये न मिले। इसलिये सिन्धियाने राणा भीमसिंहसे कहा कि आप अपनी कन्याका विवाह जयपुरके राणा जगत्सिंहसे न कीजिये और जयपुरसे जो लोग आये हों उन्हें लौटा दीजिये तथा कृष्णकुमारीका विवाह मेवाड़के राजा मानसिंहसे कर दीजिये। लेकिन राणा भीमसिंहकी इच्छा पहिलेहीसे न थी कि उनकी कन्याका विवाह मानसिंहसे हो इसलिये उन्होंने सिन्धियाकी बातपर कुछ ध्यान न दिया। इसपर सिन्धियाने क्रुद्ध होकर बहुत सी

* इसी सुन्दरीका विषय लेकर ग्रीसके महाकवि होमरने इलियड नामक ग्रन्थकी रचना की थी। उसकी अनुपम सुन्दरताके कारण चारों ओरके राजा उससे विवाह करनेकी इच्छा करने लगे और अन्तमें स्पारटाके राजा मिनिलाससे उसका विवाह हो गया। विवाहके थोड़े ही दिनों बाद पेरिस नामक एक राजकुमार जिसे किसी देवीसे वर मिला हुआ था हेलेनाको भगा ले गया। कहते हैं कि हेलेना अपनी इच्छासे उसके साथ भाग खड़ी हुई थी। इसीलिये ट्रायजन और यूनानियोंमें युद्ध छिड़ गया। युद्धकी समाप्तिपर हेलेना अपने पूर्वस्वामी मिनिलासकी पास चली आई।

तोपें तथा फौजें उदयपुरपर चढ़ाई करनेके लिये भेज दीं। जब राणा भीमसिंह को यह समाचार मिला तो उन्होंने भी अपनी सेना सिन्धियाके विरुद्ध भेजी। इस सेनामें वे तीन सहस्र सैनिक भी मिल गये जो राणा जगत्‌सिंहकी ओरसे जयपुर से आये थे। यद्यपि राणा भीमसिंहकी सेनाने सिन्धियाकी सेनाको उदयपुरमें न आने देनेके लिये अनेक प्रयत्न किये पर वे सब व्यर्थ हुए और सिन्धियाने उन्हें परास्त कर दिया। सिन्धिया आठ सहस्र सेनाके सहित उदयपुरमें घुस आया और राजधानीके निकट उसने अपना डेरा डाला। राणा भीमसिंह इस समय बड़ी विपद्‌में पड़े। इस विपत्तिसे निकलनेके लिये उन्होंने अपने सरदारोंको इकट्ठा करके उनसे परामर्श किया। अनेक तर्क वितर्कके उपरान्त यही निश्चय हुआ कि राजकुमारीका विवाह जयपुरके राणा जगत्‌सिंहसे न किया जाय। उन्होंने जयपुरसे आई हुई सेनाको बिदा कर दिया और कोई दूसरा उपाय न देखकर राजकुमारीका विवाह राजा मानसिंह हीसे करना निश्चय किया। कोई एक मास तक सिन्धिया वहीं ठहरा रहा; इस बीचमें उसने एक बार राणासे भगवान एकलिङ्गके मन्दिरमें मुलाकात की *।

* इस अवसरपर अपनी शक्तिका परिचय देने लिये सिन्धियाने अङ्गरेजी दूतको भी बुला लिया था। सभास्थलमें सूर्यवंशी बाघरावलके वंशधर राणा और मराठोंके अस्वाभाविक राजचिन्हका पार्थक्य दिखाई देता था। सिन्धियाके पूर्व पुरुष हल चलाते थे; पर इस समय वह एक राजा बन गया था। कृषक कुलमें जन्म लेनेपर भी उसकी इच्छा थी कि सूर्यवंशी राजाओंका पवित्र राज्यासन वह छीन ले। उदयपुरके ऊंचे प्रासाद और सुन्दर उद्यानोंको देखकर उसकी यह इच्छा और भी बढ़ गई थी। बहुतसे लोग अनुमान करते थे कि जयपुरके राणा जगत्‌सिंहसे सिन्धियाका बैर केवल कर न देनेके कारण ही न था बल्कि उसकी इच्छा थी कि वह स्वयं राजकुमारीसे विवाह कर ले।

अङ्गरेजोंकी ओरसे जो दूत गये थे उनमें इस पुस्तकके मूल ग्रन्थकार—टाड साहब भी थे। टाड साहब कहते हैं कि राणा भीमसिंहके कष्टको जिनकी कुलमें लगातार सौ पुश्तोंतक महाराज ही होते आये थे, देखकर मेरे हृदयपर जो भाव उत्पन्न हुए वे कभी मिट नहीं सकते। मेरी उत्कट इच्छा थी कि जिस प्रकार हो

जयपुर नरेशको अपनी सेनाके इस प्रकार निकाल दिये जानेपर, बहुत ही क्रोध आया और उन्होंने पूर्णरूपसे निश्चय कर लिया कि इस अपमानका बदला लेंगे। उन्होंने एक इतनी बड़ी सेना तैयार की कि जितनी राज्यके पूर्ण वैभवके समय भी इकत्र न हुई थी। इधर मारवाड़ नरेश मानसिंहने अपने प्रतिद्वन्द्वीकी लड़ाईकी इच्छा जानकर स्वयं अपनी सेनाभी एकत्र कर ली। लेकिन इस समय उनकी प्रजामें दो दल हो गये जिससे उनके मार्गमें एक बड़ी रुकावट पड़ी। मानसिंह वास्तवमें मारवाड़के राज्यासनके अधिकारी न थे। राज्यके वास्तविक अधिकारीको राज्यसे वञ्चित रखकर माराठोंकी सहायतासे मानसिंहने वह राज्य अपने अधिकारमें कर लिया था। इसलिये मारवाड़के अनेक ठाकुर और सरदार पहलेहीसे उनके प्रतिकूल थे। अवसर पाकर उन सरदारोंने एक नवीन पक्ष खड़ा करके बहुत सी सेना एकत्र कर ली थी। इस समय वह सेना जाकर जयपुरके राणासे मिल गई और उनकी सेनाकी संख्या १२०००० हो गई। जयपुर नरेश इस सवा लाख सेनाको लेकर मारवाड़की ओर बढ़े और इधर मानसिंह भी उससे आधी सेना लेकर अपने प्रतिद्वन्द्वीके सम्मुख आये। मारवाड़ और अम्बरकी सीमापर पर्वतसर नामक स्थानमें दोनों ओरकी सेनाएँ एक दूसरेके सामने खड़ी हुईं। जिस उत्साहसे इन दोनों सेनाओंने एक दूसरेपर आक्रमण किया था उससे निश्चय हो गया था कि घोर युद्ध होगा। लेकिन वह बात न हुई। कुछ ही देर युद्ध होनेके उपरान्त मानसिंहके अधिकांश सरदारगण जगत्‌सिंहसे जा मिले। मानसिंहकी सभी आशाओंपर पानी फर गया। जिन सरदारोंपर उन्होंने विश्वास किया था वे एकदम उनसे विमुख हो गये और शत्रुओंसे जा मिले। भला इससे बढ़कर उनके लिये और कौनसी दुःखकी बात हो सकती थी! अन्त

राणा इस गिरी हुई दशासे निकलकर उन्नति लाभ करें। मैं उन कारणोंकी खोज करने लगा जिनसे उस राज्यकी उन्नति सम्भावित थी। मैं समझता था कि काल चक्रके पलटनेपर जब राणामें कुछ शक्ति आवेगी तो वे स्वयं ही स्वतन्त्र हो जायंगे। लेकिन अन्तमें दस वर्ष बाद उन्नतिके कुछ कुछ चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे राणाने अपने कुलको नष्ट होनेसे बचा लिया और धीरे धीरे अपने देशकी दशा सुधार ली।

में निराश होकर मानसिंह खञ्जर मारकर आत्मघात करनेपर उद्यत हुए। इतने में कुछ सरदार जिन्होंने उनका पक्ष अबतक न छोड़ा था, उनके निकट आये और उनके हाथसे खञ्जर छीनकर उन्हें राजधानीकी ओर ले गये। लेकिन इतने हीसे उनका छुटकारा न हुआ। शत्रुओंने उनका पीछा किया और जब वे राजधानीके निकट पहुंचे तो लोगोंने नगरके मुख्य द्वारको बन्द कर दिया और शत्रुओंकी सेना नगरमें प्रवेश न कर सकी। इसके उपरान्त शत्रुओंने जोधपुरको घेर लिया। लगातार छः मासतक दोनों दलोंमे घोर युद्ध होता रहा। नगरनिवासी छः मासतक बराबर शत्रुओंके बाहरी आक्रमण और चेष्टाओंको व्यर्थ करते रहे। लेकिन इतने दिनोंतक नगरमें बन्द होकर लड़नेके कारण वे लोग बिलकुल ही निस्तेज और हीन हो गये थे; इसलिये जोधपुरपर शत्रुओंका अधिकार हो गया। अधिकार हो जानेपर शत्रुओंने वहांकी सब सामग्री लूट ली। लेकिन इस अवसरपर उन लोगोंमें साम्प्रदायिक भाव उत्पन्न होनेके कारण उनके सब परिश्रम निष्फल हो गये। यही साम्प्रदायिक भाव कछवाहों में इतना अधिक बढ़ गया कि थोड़े ही समय में उनका प्रत्येक दल अलग अलग हो गया। उस समय राठौड़ोंने अवसर पाकर उन छोटे छोटे दलोंपर आक्रमण करके उनका संहार किया।

अन्तमें प्राण भयके कारण जगत्सिंह युद्धक्षेत्रसे भागनेपर विवश हुए। विपद् की आशङ्का होनेपर उन्होंने पर्वतसर और जोधपुरकी लूटमें पाया हुआ सारा धन अपनी राजधानीकी ओर भेज दिया। लेकिन उस धनके जयपुरसे बाहर निकलने के पहिलेही राठौरोंने उसे छीनकर अपने आधीन कर लिया। यद्यपि कुछ सरदारोंने मानसिंहका पक्ष छोड़ दिया था तौभी जन्मभूमिके प्रति उनका जो अनुराग था वह कम नहीं हुआ था। उस समय स्वदेशकी दुर्गतिको देखकर उनके ज्ञानचक्षु खुले और उन्होंने समझ लिया कि उन्हींकी कायरताके कारण उनकी जन्मभूमिकी यह दुरावस्था हुई थी। यदि वे लोग अम्बरवालोंसे न जा मिलते तो उनका प्रधान नगर इस प्रकार न लूटा जाता। इन्हीं सब बातोंको विचारकर उन्होंने कछवाहोंपर आक्रमण कर वह सारा धन उनसे छीन लिया जो उन्होंने मेवाड़में लूट मार करके एकत्र किया था।

कालचक्रकी गतिसे जगत्सिंहके सब उपाय नष्ट हो गये और उनकी सारी

आशाओंपर पानी फिर गया। जिस सुविशाल सेनाको लेकर वे मेवाड़भूमिपर आक्रमण करनेके लिये आये थे, वह छिन्न भिन्न हो गई थी। अनेक कष्ट उठाकर वे अपने प्राण लेकर मारवाड़से भागे। मारवाड़में आनेसे उनको तथा उनकी सेनाको बड़ी ही दुर्दशा हुई थी। बड़े ही कुसमयमें उन्होंने कृष्णकुमारीसे विवाह करनेकी इच्छा की थी और मानसिंहपर आक्रमण किया था। अपनी राजधानीमें पहुंचनेपरभी दुःख तथा कष्टने उनका पीछा न छोड़ा। एक तो पराजित होने और दूसरे बहुत दिनोंसे वेतन न पानेके कारण जगत्‌सिंहके सैनिक बहुतही अधीर हो गये थे। जयपुरमें उन्हें वेतन आदिके लिये असह्य कष्ट उठाना पड़ा था। राजधानीके निकटका मैदान उन सैनिकोंकी चिताभस्म और घोड़ोंकी हड्डियोंसे बिलकुल भर गया था। †

संसारकी गति भी बहुत विचित्र है। वही राजा मानसिंह जिन्हें एक बार सरदारोंने समरमें छोड़कर विपद्‌के मुंहमें डाल दिया था, आज सब विपत्तियों और कष्टोंसे छुटकारा पाकर भली भांति अपना राजकार्य चला रहे हैं। उनका भीषण शत्रुदल परास्त हो गया था और अपना गया हुआ गौरव उन्होंने पुनः सम्पादन कर लिया था। यह सब बातें अमीरखां नामक एक दुष्ट पठानकी सहायतासे हुई थी। आजतक भारतवर्षमें जितने अत्याचारी मुसलमान उत्पन्न हुए थे उनमें से अमीरखां सबोंसे बढ़ा चढ़ा था। इस घटनाके पहले अमीरखांकी गणना मानसिंहके भीषण शत्रुओंमें थी। युद्धके समय भी वह मानसिंहके उन शत्रुओंकी ओर था जो राज्यके वास्तविक अधिकारी थे। लेकिन अन्तमें अपनी नीच प्रकृतिके अनुसार लोभवश उसने मानसिंहका पक्ष ग्रहण किया। जिस राजाने बहुत दिनोंतक उसकी रक्षा की थी और उसे अपनी सेवामें रखा था, अमीरखांने उसी राजाका

† टाड साहबने इस युद्धका आरम्भ और परिणाम अपनी आंखोंसे देखा था और वहांके कई सरदारोंसे इस विषयमें बातचीत भी की थी। सन् १८०६ के जून मासमें उदयपुरकी घाटीमें शत्रुकी सेनाने डेरा डाला था; और सन् १८०८ की जनवरी मासमें जब टाड साहब जयपुरसे होकर जा रहे थे, उस समय चारों ओर शान्ति थी। हां, उस बालुकामयी भूमिपर उस युद्ध काण्डके कुछ चिह्न अवश्य वर्त्तमान थे।

सर्वनाश करनेमें कुछ भी आगा पीछा नहीं किया। मानसिंहके शत्रु राजा और उसके सरदारोंको मार डालनेकी दृढ़ प्रतिज्ञा करके अमीरखां उनसे साक्षात् करने गया और एक मसजिदमें उनसे मित्रता करके उसके विपक्षी सरदारोंसे अपनी पगड़ी बदल ली। वे सरदारगण उसके भीतरी कपटभावका अनुमान भी न कर सके। वे उससे मित्रता करके बहुत ही आनन्दित हुए और अपना अहो-भाग्य समझने लगे। उन्होंने अपने खेमेमें नाचका प्रबन्ध कराया। ठीक उसी समय जब कि वे लोग नाच देखते और गाना सुनते थे, अमीरखां अपने दल बल सहित आकर उनपर टूट पड़ा और खेमे आदि तोड़ फोड़कर उनपर गोलियों की वर्षा करने लगा। इस प्रकार विश्वासघात करके उसने उन सरदारों तथा सेनाको मार डाला।

इस प्रकार राजस्थानकी रङ्गभूमिपर इस वियोगान्तनाटकका एक अङ्क समाप्त हुआ। साथही इसके उपरान्त एक और ऐसी लोमहर्षण घटना हुई जिसका हाल सुनकर किसी पाषाण हृदयको भी दुःख हुए बिना नहीं रह सकता उन दोनों राजाओंने सीसोदीय कुलकी लक्ष्मीस्वरूपिणी कृष्णकुमारीसे विवाहके लिये जो विचार किये थे वे अबतक बदले न थे। मारवाड़ और अम्बरका भीषण युद्ध एक प्रकार समाप्त हो गया था। लेकिन जिस रमणीके कारण उन दोनोंमें आपसमें विद्वेष भाव उत्पन्न हुआ था, उसके पानेकी इच्छा अभीतक किसीके हृदयसे न गई थी। इसलिये उन लोगोंमें जो बैर था वह कम न हुआ; और उस बैरसे जो अग्नि प्रज्वलित हुई थी वह अबतक बुझी न थी। यह अग्नि केवल उस पवित्र कुमारी के रक्तहीसे बुझ सकती थी। हतभाग्य राणा भीमसिंह नरपिशाच अमीरखांके हाथकी कठपुतली हो रहे थे। स्वयं उनमें कुछ भी बल या साहस न था। वीर-पूज्य सीसोदीय कुलमें जन्म ग्रहण करनेपर भी उस समय वे बिलकुलही हीन हो गये थे। यदि उनमें स्वयं कुछ भी बल होता तो क्या वे कभी निरपराधी सरला कृष्णकुमारी के बधकी आज्ञा देते और प्रजाके सुख दुःखका ध्यान न करते हुए उसे मार डालनेपर उद्यत होते? वे सीसोदीय कुलके अयोग्य वंशज और राज-पूत कुलके अयोग्य राजा थे। पाठकगण! यदि आप उस सुरसुन्दरी कृष्णकुमारी के लिये दो बून्द आंसू बहाना चाहते हैं, यदि उसकी हतभागिनी माताका हृदय-

विदारक विलाप सुनना चाहते हैं, और यदि पराये दुःख और स्वर्गीय सौन्दर्यके अकाल और अयोग्य विनाशसे कुछ सहानुभूति रखते हैं तो आइये, एक बार उदयपुरकी घाटीकी ओर चलें जहांसे शीघ्रही कृष्णकुमारी इस प्रकार संसारको छोड़कर सुरपुरको सिधारनेवाली है।

लावण्यवती कृष्णकुमारीने सोलहवें वर्षमें पदार्पण किया था। स्वर्गीय सौन्दर्य उसके अङ्ग अङ्गसे फूटा पड़ता था। जिस प्रकार पितृवंशमें उसने उच्चकुलमें जन्म लिया था उसी प्रकार मातृवंशमें भी वैसा ही ऊंचा कुलगौरव प्राप्त था। प्राचीन समयमें बहुत दिनोंतक चावड़ा जातिके जो राजा राज्य करते थे, कृष्णकुमारीकी माता उन्हींके वंशमेंसे थी। अनुपम रूपके साथ ही साथ उसमें अनेक गुण भी थे। इसी लिये लोग उसे राजस्थानकी कमलिनी कहते थे। किन्तु दुर्भाग्यवश भारत उस लावण्यको देखकर अपनी आंखें तृप्त न कर सका और उस 'कमलिनी' की स्वर्गीय और मनोहर सुबास न ले सका। सौन्दर्य विकाशके प्रारम्भ कालमें वह सुन्दरी कुसमयमेंही अनन्तकालके लिये इस संसारको छोड़ गई। कृष्णकुमारीके समान सुन्दरी और अभागिनी स्त्रियां संसारमें बहुतही कम हुई होंगी। ऊंचे राजपूत कुलमें जन्म ग्रहण करके इतने असह्य कष्ट कदाचित् ही दो चार व्यक्तियोंने भोगे होंगे और जन्मभूमिके लिये शायद ही दो चार स्त्रियोंने इस प्रकार आत्मोत्सर्ग किया होगा। उसका अमूल्य जीवन व्यर्थ ही नष्ट हो गया। रोममें जिस समय वर्जीनियाके * पिताने अपनी प्रतिष्ठाकी रक्षाके लिये उसे खञ्जर से मार डाला था, तो उसने उलटे अपने पिताके इस कार्यकी प्रशंसा की थी। कुमारी एफीजोनिया † भी इसी प्रकार प्रसन्नतापूर्वक अपने प्राण देनेपर उद्यत हुई थी। पवित्रहृदया आर्यसुन्दरी कृष्णकुमारीके समान स्त्रियां किसी देशमें नहीं होतीं। तौभी किसी किसी अंशमें युरोपकी उक्त दो रमणियां कृष्णकुमारी

* वर्जीनिया नामक एक ल्यूसियस वर्जीनियसकी कन्या थी। एक बार एपियस क्लाडियस रोम दुष्टने वर्जीनियाको बलपूर्वक भगा ले जानेकी चेष्टा की। ल्यूसियसने अपनी कन्याके सतीत्व और सम्मानकी रक्षाका और कोई उपाय न देखकर उसे अपने हाथसे मार डाला।

† एफीजोनिया ग्रीसके प्रसिद्ध वीर एगीमेमनकी कन्या थी। एगीमेमनने

के समान हैं। उसके इस शोचनीय आत्मोत्सर्गका हाल सुनकर किसीको अश्रुपात हुए बिना नहीं रह सकता। जिस दिन वह आत्मोत्सर्गका ज्वलन्त उदाहरण दिखलाती हुई इस संसारसे बिदा हुई थी, वह दिन अनन्त कालसागरमें विलीन हो गया; तौभी मेवाड़निवासी अबतक उस हृदय विदारक घटनाको भूले नहीं हैं। आज भी उसकी बात पूछनेपर मेवाड़वासियोंका कण्ठ रुध जाता है और आंखोंसे आंसुओंकी धारा बहने लगती है।

रक्तका प्यासा अमीरखां विश्वासघातकतासे राठौरोंको मारकर उदयपुर पहुंचा। यद्यपि लोग उसके नामसे घृणा करते थे, तौभी आश्चर्यका विषय है कि चूण्डावत सरदार अजीतसिंहने उसका बहुत आदर किया। अजीतसिंह स्वभावत: शान्त और शिष्ट था; उसे दिखौआ तड़क भड़क पसन्द न थी। लेकिन उसे ऊंचा पद और गौरव पानेकी इच्छा अवश्य थी। उसके हृदयमें धर्मानुराग प्रबल था। हृदय में धर्मनुरागकी प्रबलता होनेके कारण मनुष्यको हिंसा, द्वेष स्वार्थपरता, दुराकांक्षा आदि दुर्गुणोंसे स्वभावत: घृणा होती है। लेकिन अजीतसिंहमें वह बात न थी। उसके हृदयमें जो दुराकांक्षा होती थी उसके रोकनेमें उसका धर्मभाव एक प्रकार बिलकुल ही अशक्त था। उस दुराकांक्षाको पूरा करनेके लिये आवश्यकता पड़नेपर अजीतसिंह सारे संसारको ध्वंस कर सकता था। भला ऐसी दुराकांक्षाको निर्मूल करनेके लिये धर्मभावमें कब सामर्थ्य हो सकती है? अजीतसिंहका यह धर्मभाव बहुत ही विचित्र और अद्भुत था। दुष्ट अमीरखांका बहुत आदर सत्कार करके अजीतसिंह इससे कृष्णकुमारीके विषयमें परामर्श करने लगा। उस दुराचारी पठान ने स्पष्ट रूपसे कह दिया—'या तो राजकुमारीका विवाह मानसिंहसे कर दीजिये और या उसे मारकर राजवाड़ेमें शान्ति स्थापित कीजिये। इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। यदि राणा किसी दूसरे उपायका अवलम्बन करेंगे तो उन्हें बड़े सङ्कटका सामना करना पड़ेगा।' जब राणाकी यह बात

एक मनत मानी थी और उसीके अनुसार वह डियाना देवीके सामने अपनी कन्याका बलिदान दिया चाहता था। कहते हैं कि देवीने स्वयं आकर बधस्थान से कुमारीको उठा लिया और टारिस नामक नगरमें ले जाकर अपने मन्दिर में रखा।

मालूम हुई तो वे बहुतही चिन्तित हुए। जीवन स्वरूपिणी अपनी कन्याके सम्बन्ध में चिन्ता करते करते वे एक दम और हो गये। इस समय क्या करना चाहिये, किस प्रकार इन कष्टोंसे छुटकारा होगा आदि वे उस समय कुछ भी स्थिर न कर सके। उन्होंने समझ लिया कि यदि अमीरखांकी बात अस्वीकार की जायगी तो सारा उदयपुर नष्ट भ्रष्ट हो जायगा। एक ओर कन्याका स्नेह धीरे धीरे उनके हृदयमें अमृतकी धारा सींचने लगा और दूसरी ओर अमीरखांका कठोर अनुशासन मारवाड़का भविष्यत्-चित्र उनके संमुख आकर उनके हृदय को और भी कठोर बनाने लगा। अन्तमें उस स्नेहकी तिलाञ्जुली देकर मारवाड़की रक्षा का और कोई उपाय न होनेके कारण कलेजेपर पत्थर रखकर उन्होंने आज्ञा दे दी कि राजकुमारी का बध किया जाय!

मेवाड़भूमिके लिये राजनन्दिनी कृष्णकुमारीका बध किया जायगा। लेकिन सबसे बढ़कर कठिनता यह थी कि इस कार्यको सम्पन्न कौन करेगा। संसारमें ऐसा कौन कठोर हृदय होगा, मानवकुलमें ऐसा कौन राक्षस होगा, जो अपने हाथसे उस निरपराधिनी सुकुमारीपर खञ्जर चला सकेगा? इसी बातका विचार करनेके लिये राणाने अपने सरदारों और सम्बन्धियोंको अन्त:पुरमें बुलाया और इस सम्बन्धमें तर्क वितर्क करना आरम्भ किया। बहुत देरतक वादानुवाद होनेके उपरान्त निश्चय हुआ कि इस पैशाचिक कार्यके करनेके लिये किसी कठोरहृदय पुरुषको नियुक्त करना चाहिये और यदि वह इस कार्यके लिये अयोग्य हो तो किसी स्त्री को यह कार्य सौंपा जाय। पूर्वी नरेशोंके अन्त:पुरके भी एक स्वतन्त्र संसारही समझना चाहिये क्योंकि बाहरी जगतसे उसका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं होता। उन्हीं अन्त:पुरोंमें प्रजाके सुख दु:खका बीज अङ्कुरित होता है। जिन लोगोंपर इस बीजकी रक्षाका भार होता है उनके अतिरिक्त और कोई व्यक्ति उसका हाल नहीं जान सकता। पहले कृष्णकुमारीको एक पुरुषके हाथों बध करानेका विचार हुआ। सीसोदीयकुलके महाराज दौलतसिंह * उस समय अन्त:पुरमें उपस्थित थे। वे राणाके सम्बन्धियोंमेंसे थे। उन्हींको कृष्णकुमारीके बधका भार दिया गया।

* टाड साहब महाराज दौलतसिंहको भली भांति जानते थे। महाराज बड़ेही सज्जन थे और उनका स्वभाव बहुत सरल था।